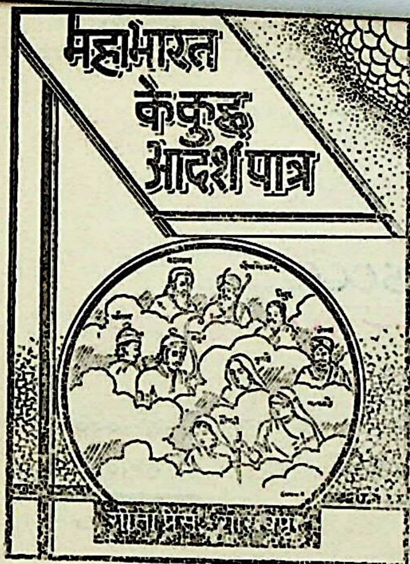
महाभारत के कुछ आदर्श पात्र



गीता प्रेस, गोरखपुर


महाभारत
के कुछ
आदर्श पात्र

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं०	२००० से २०४३	तक	२,७५,०००
सं०	२०४४	इक्कीसवाँ संस्करण	१५,०००
		कुल	२,९०,०००

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तिकामें 'कल्याण' वर्ष १७, अङ्क १२ में गये हुए दो लेख छापे गये हैं।

'महाभारतमें श्रीकृष्ण' शीर्षक लेखके लेखक हैं श्री-हनुमानप्रसाद पोद्दार और 'महाभारतके कुछ आदर्श पात्र' नामक लेख श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित है।

दोनों लेखोंमें महाभारतके दस उत्कृष्ट पात्रोंके जीवनकी आदर्श, महत्त्वपूर्ण और उपदेशप्रद घटनाएँ हैं।

आशा है कि पाठकगण इनसे यथासम्भव लाभ उठानेका प्रयत्न करेंगे।

—प्रकाशक



॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची



श्रीहरिः

१—महाभारतमें श्रीकृष्ण

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आजकल अनेकों प्रकारकी मनमानी कल्पनाएँ की जाती हैं। कोई कहते हैं कि श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे। कोई कहते हैं कि श्रीकृष्णनामके व्यक्ति कुछ हजार वर्ष पूर्व हुए तो हैं, परंतु वे केवल एक लोकोत्तर मानव थे। भगवद्गीतामें श्रीकृष्णका जो स्वरूप मिलता है, वह तो विशुद्ध ज्ञान है। वैसे कोई व्यक्ति जगत्‌में नहीं हुए। कुछ लोगोंका कहना है कि श्रीकृष्ण नामके अनेक व्यक्ति हो चुके हैं—भागवतके श्रीकृष्ण अलग थे और महाभारतके अलग। यही नहीं, कुछ तो यहाँतक कह बैठते हैं कि वृन्दावनके श्रीकृष्ण और थे, मथुराके और तथा द्वारकाके श्रीकृष्ण तीसरे ही थे। प्रस्तुत लेखमें महाभारतके आधारपर यह दिखलानेकी चेष्टा की जायेगी कि महाभारत और भागवतके श्रीकृष्ण एक ही थे और वे पूर्णतम पुरुषोत्तम थे। गीतामें उन्होंने जो अपना स्वरूप बतलाया है, वही उनका वास्तविक स्वरूप है और महाभारतके विभिन्न स्थलोंसे इसी बातकी पुष्टि होती है।

(१)

जगन्नियन्ता, देवाधिदेव, अखिललोकपति भगवान् नारायण ही वासुदेव श्रीकृष्णके रूपमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे, भागवतकी भाँति महाभारतने भी इस बातको स्वीकार किया है (देखिये आदिपर्व, अध्याय ६४)। धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें बड़े-बड़े महर्षियोंके साथ देवर्षि नारद भी यज्ञकी शोभाको देखनेके लिये पधारते हैं।

अन्यान्य राजाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णको सभामण्डपमें उपस्थित देखकर उन्हें भगवान् नारायणके भूमण्डलपर अवतीर्ण होनेकी बात स्मरण हो आती है (सभा० ३६ । १२) और वे मन-ही-मन पुण्डरीकाक्ष श्रीहरिका चिन्तन करने लगते हैं। इसके बाद सभामें जब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आगन्तुक महानुभावोंमें सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय, उस समय कुरुकुलवृद्ध वीरशिरोमणि महात्मा भीष्म यह कहते हुए कि 'मैं तो भूमण्डलभरमें श्रीकृष्णको ही प्रथम पूजनेके योग्य समझता हूँ,' भरी सभामें उनकी महिमाका बखान करने लगते हैं। वे कहते हैं—'वासुदेव ही इस चराचर विश्वके उत्पत्ति एवं प्रलयस्वरूप हैं और इस चराचर प्राणि-जगत्का अस्तित्व उन्हींके लिये है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और समस्त प्राणियोंके अधीश्वर हैं, अतएव परम पूजनीय हैं।'* देवर्षि नारदजी भी इस प्रस्तावका समर्थन करते हैं (सभा० ३९ । ८)। यही नहीं, इस प्रस्तावका अनुमोदन करनेवाले सहदेवपर देवतालोग आकाशसे पुष्पवृष्टि करते हैं और आकाशवाणी भी 'साधु-साधु' कहकर उनकी सराहना करती है।†

---

* कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमो हरिः॥
(सभा० ३८ । २३-२४)

† ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिः सहदेवस्य मूर्धनि।
अदृश्यरूपा वाचाश्चाप्यब्रुवन् साधु साध्विति॥ (३९ । ६)

श्रीकृष्णके बालचरित्रोंका वर्णन साक्षात्‌रूपसे महाभारतमें नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि उन चरित्रोंका महाभारतके मुख्य कथानकसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अवश्य ही हरिवंशपर्वमें, जो महाभारतका ही परिशिष्ट भाग है, इस कमीको पूरा किया गया है। फिर भी प्रसङ्गवश महाभारतके ही विभिन्न पात्रोंद्वारा श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। भीष्मपितामहके उपर्युक्त प्रस्तावका विरोध करते हुए चेदिराज शिशुपाल, जो श्रीकृष्णका जन्मसे ही विरोधी था और रुक्मिणी-हरणके बादसे तो उनसे और भी अधिक जलता था, बालकपनमें क्रमशः उनके द्वारा पूतना, बकासुर, केशी, वृषासुर और कंसके मारे जाने, शकटके गिराये जाने तथा गोवर्धन पर्वतके उठाये जाने आदिका उल्लेख करता है (सभा० ४१। ४, ७–११)। यद्यपि इन सब घटनाओंका उल्लेख उसने श्रीकृष्णकी निन्दाके तात्पर्यसे ही किया है, फिर भी उसने इन सबकी सचाईको स्वीकार किया है। शत्रुओंके द्वारा वर्णन किये हुए इन अलौकिक चरित्रोंसे श्रीकृष्णकी लोकोत्तरता तो प्रकट होती ही है; साथ ही जो लोग भागवतके श्रीकृष्णको महाभारतके श्रीकृष्णसे भिन्न मानते हैं, उन्हें अपने मतपर पुनर्विचार करनेके लिये पर्याप्त कारण भी मिल जाता है। अस्तु, इस प्रसङ्गपर शिशुपालने श्रीकृष्णको तथा उनकी प्रशंसा करनेवाले भीष्मपितामहको बहुत कुछ खोटी-खरी सुनायी। किन्तु श्रीकृष्ण वीरतापूर्वक उसके सारे अपराधोंको सहते रहे। अन्तमें जब उन्होंने देखा कि अन्य सभासदोंके समझानेपर भी वह किसी प्रकार शान्त नहीं होता तब उन्होंने अपने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया (सभा० ४५। २१) और सबके देखते-देखते उस तीखी धारवाले चक्रसे उसका सिर धड़से अलग कर दिया।

उस समय सभामें उपस्थित सब लोगोंने देखा कि शिशुपालके शरीरसे एक बड़ा भारी तेजका पुञ्ज निकला और वह जगद्वन्द्य श्रीकृष्णको प्रणाम कर उन्हींके शरीरमें प्रवेश कर गया।* इस अलौकिक घटनासे श्रीकृष्णकी भगवत्ता तो प्रमाणित होती ही है, साथ ही जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उन्हें इस बातका भी प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि चाहे कोई कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवान्के हाथसे मारे जानेपर उसकी सायुज्यमुक्ति हो जाती है, वह भगवान्के स्वरूपमें लीन हो जाता है। यही उनकी अनुपम दयालुता है। वे मारकर भी जीवका उद्धार ही करते हैं। फिर पाण्डवोंकी भाँति जो उनसे प्रेम करते हैं, उनके हाथों वे अपनेको बेच दें— इसमें आश्चर्य ही क्या है!

(२)

दुष्ट दुःशासनके द्वारा अपमानित द्रौपदी जिस समय असहाय होकर श्रीकृष्णको पुकारती है, उस समय वह उन्हें 'गोपीजनवल्लभ,' 'व्रजनाथ' आदि नामोंसे स्मरण करती है।† इससे भी यही सिद्ध

* ततश्चेदिपतेर्देहात्तेजोऽग्र्यं ददृशुर्नृपाः।
उत्पतन्तं महाराज गगनादिव भास्करम्॥
ततः कमलपत्राक्षं कृष्णं लोकनमस्कृतम्।
ववन्दे तत्तदा तेजो विवेश च नराधिप॥
तदद्भुतममन्यन्त दृष्ट्वा सर्वे महीक्षितः।
यद् विवेश महाबाहुं तत्तेजः पुरुषोत्तमम्॥
(सभा० ४५। २६–२८)

† गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
......हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥
(सभा० ६७। ४१-४२)

होता है कि वृन्दावनके श्रीकृष्ण और द्वारकाके श्रीकृष्ण अलग-अलग व्यक्ति नहीं थे। अस्तु, द्रौपदीकी उस करुण पुकारको सुनते ही करुणामय केशव द्वारकासे दौड़े आते हैं और धर्मरूपसे उसके वस्त्रमें छिपकर द्रौपदीकी लाज बचाते हैं (सभा० ६७। ४५-४९)। क्या किसी मानवके द्वारा दूरस्थित अपने भक्तकी इस प्रकार अलौकिक ढङ्गसे रक्षा सम्भव है?

(३)

धर्मात्मा पाण्डव जुएमें अपना सब कुछ गँवाकर वनवासका कष्ट उठा रहे थे। श्रीकृष्ण भी वहाँ पधारे हुए थे। उस समय महातपस्वी चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि स्वतः पाण्डवोंके पास आते हैं और बातों-ही-बातोंमें उन्हें श्रीकृष्णकी महिमा सुनाने लगते हैं। प्रलयकालका अपना अनुभव सुनाकर वे कहते हैं कि 'अनन्त जलराशिके बीच वटपत्रपर शयन करनेवाले अद्भुत शिशुके रूपमें मैंने जिन परमात्माका दर्शन किया था, वे ये ही तुम्हारे सम्बन्धी श्रीकृष्ण हैं। इन्हींके वरदानके प्रभावसे मेरी अखण्ड स्मृति बनी हुई है और मैंने हजारों वर्षोंकी आयु और स्वच्छन्द मृत्यु भी पायी है।'*

एक बार पाण्डवोंकी अहितकामनासे दुर्योधनके भेजे हुए सुलभकोप महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंके साथ वनवासी

---

* यः स देवो मया दृष्टः पुरा पद्मायतेक्षणः।
स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः॥
अस्यैव वरदानाद्धि स्मृतिर्न प्रजहाति माम्।
दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं मम॥
(वन० १८९। ५२-५३)

पाण्डवोंके अतिथि बनकर आये । भगवान् भास्करसे महाराज युधिष्ठिरको एक ऐसा चमत्कारी बर्तन प्राप्त हुआ था, जिसमें पकाये हुए अन्नसे वे चाहे जितने अतिथियोंको भरपेट भोजन करा सकते थे । परन्तु ऐसा तभीतक सम्भव था, जबतक कि द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थी । दुर्योधनके कुचक्रसे दुर्वासा ऐसे समयमें ही पहुँचे जब कि द्रौपदी सबको भोजन कराकर स्वयं खा चुकी थी । अतिथिवत्सल धर्मात्मा युधिष्ठिरने मुनिमण्डलीको भोजनके लिये आमन्त्रित किया और मुनि स्नान एवं नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये गङ्गातीरपर गये । ऐसे विकट समयमें हजारों ब्राह्मणोंको भोजन करानेका कोई साधन न देखकर द्रौपदीके मनमें बड़ी चिन्ता हुई । उसने मन-ही-मन अपने हितू तथा आत्मीय श्रीकृष्णका स्मरण किया और वे तुरन्त दौड़े हुए वहाँ आये । आते ही उन्होंने कहा—'बहिन ! मुझे बड़ी भूख लगी है, जल्दी कुछ खानेको दे ।' द्रौपदीने उन्हें सारी बात कह सुनायी । वह बोली कि मैं अभी-अभी भोजन करके उठी हूँ, उस पात्रमें अब कुछ भी नहीं बचा है । श्रीकृष्णने उसकी बातको टालते हुए कहा कि 'लाओ, वह पात्र कहाँ है ? मैं देखूँ तो ! द्रौपदीने पात्र लाकर भगवान्के सामने उपस्थित कर दिया । श्रीकृष्णने देखा कि उसके गलेमें कहीं एक सागका पत्ता चिपका रह गया है, उसीको मुँहमें डालकर उन्होंने कहा कि इस सागके पत्तेसे यज्ञभोक्ता विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि तृप्त हो जायँ ।'* इसके बाद

* उपयुज्याब्रवीदेनामनेन हरिरीश्वरः ।
विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक् ॥
(वन० २६३ । २५)

उन्होंने सहदेवजीसे कहा कि 'जाओ, मुनिमण्डलीको भोजनके लिये बुला लाओ।' सहदेव गङ्गातीरपर जाकर देखते हैं कि वहाँ कोई नहीं है। बात यह हुई कि जिस समय भगवान्‌ने सागका पत्ता मुँहमें डालकर वह सङ्कल्प पढ़ा, उस समय मुनि जलमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन सबको ऐसा अनुभव हुआ कि मानो उनका पेट गलेतक अन्नसे भर गया है। तब तो वे बहुत डरे और यह सोचकर कि पाण्डवोंके यहाँ जो रसोई बनी होगी वह व्यर्थ जायेगी, पाण्डवोंके क्रोधकी आशङ्कासे चुपचाप भाग निकले। वे यह जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीषके यहाँ उनपर जो कुछ बीती थी, उसके बादसे उन्हें भगवान्‌के भक्तोंसे बड़ा डर लगने लगा था। सहदेव उन्हें गङ्गातीरपर न देखकर लौट आये। इस प्रकार शरणागतवत्सल श्रीहरिने अपने आश्रितोंकी रक्षा की। धन्य भक्त-वत्सलता! इस प्रकारके चरित्रोंसे स्पष्ट ही श्रीकृष्णकी भगवत्ता और सर्वव्यापकता सूचित होती है।

(४)

सञ्जय धृतराष्ट्रके मन्त्री और कृपापात्र थे। वे कौरवोंके दूत बनकर उपप्लव्यमें पाण्डवोंके पास जाते हैं और वहाँसे लौटकर धृतराष्ट्रको उनका सन्देश सुनाते हैं। उस प्रसङ्गमें वे श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—'श्रीकृष्ण यदि चाहें तो सङ्कल्पमात्रसे इस सम्पूर्ण जगत्‌को जलाकर भस्म कर डालें; परन्तु सारा जगत् श्रीकृष्णको जलाकर भस्म नहीं कर सकता।

जहाँ सत्य है, जहाँ धर्म हैं, जहाँ लज्जा-सङ्कोच है और जहाँ सरलता है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। भगवान् श्रीकृष्ण अपनी योगशक्तिसे कालचक्र, जगत्-चक्र और युगचक्रको रात-दिन चलाया करते हैं। वे ही कालके, मृत्युके एवं चराचर जगत्के स्वामी हैं।'* महाभारतके रचयिता महर्षि वेदव्यास भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। वे भी सञ्जयकी उक्तिका समर्थन करते हुए कहते हैं—'राजन्! सञ्जय बिल्कुल ठीक कह रहा है। यह मायाको वशमें रखनेवाले, पुराणपुरुष, सबके अन्तर्यामी श्रीकृष्णके स्वरूपको जानता है। यदि तुम एकाग्र मनसे इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें संसारभयसे छुड़ा देगा।'†

जिस समय श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर कौरवोंकी सभामें जाते हैं। उस समय परशुराम, कण्व,

---

* भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनः॥
यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥
कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतेऽनिशम्॥
कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
(उद्योग० ६८। ७–९, १२-१३)

† जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम्।
शुश्रूषमाणमेकाग्रं मोक्ष्यते महतो भयात्॥
(उद्योग० ६९। १२)

नारद आदि अनेक महर्षि एवं देवर्षि उनका दिव्य एवं नीतिपूर्ण भाषण सुननेके लिये वहाँ उपस्थित होते हैं और मन्त्रमुग्धकी भाँति श्रीकृष्णकी दिव्यवाणी सुनते हैं । जब श्रीकृष्ण अपना धर्ममय सन्देश कह चुकते हैं, उस समय ये महर्षिगण भी क्रमशः उनके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए दुर्योधनको समझाते हैं और साथ ही उसे श्रीकृष्णकी महिमा भी सुनाते हैं । वे उसे बतलाते हैं कि सम्पूर्ण जगत्के रचनेवाले, सबके प्रभु एवं सबके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी भगवान् नारायण ही श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हैं; किन्तु दुर्योधनके सिरपर तो काल नाच रहा था, इसीलिये उसने इन महात्माओंकी हितभरी वाणीपर ध्यान नहीं दिया और उल्टे श्रीकृष्णपर खीझकर वह उन्हें कैद करनेका उपाय सोचने लगा । श्रीकृष्णको उसकी इस कपटभरी चालका पता लग गया । उन्होंने सबके सामने उसे फटकारते हुए कहा—'अरे दुष्ट ! तू यह समझ रहा है कि मैं अकेला हूँ और इसीलिये मेरा पराभाव करके मुझे कैद करना चाहता है ? परन्तु तुझे यह नहीं मालूम है कि सारे पाण्डव, सारे अन्धक और सारे वृष्णि यहीं हैं तथा आदित्य, रुद्र, वसु एवं सम्पूर्ण महर्षि भी यहीं हैं ।' यों कहकर श्रीकृष्ण जोरसे हँसे । उसी समय उनके अङ्गोंमें बिजलीके समान कान्तिवाले ब्रह्मादिक देवता दीखने लगे । उन सबके शरीर अँगूठेके परिमाणके थे और वे अपने अङ्गोंसे अग्निकी चिनगारियाँ छोड़ रहे थे । श्रीकृष्णके ललाटमें ब्रह्मा, वक्षःस्थलमें रुद्र तथा भुजाओंमें इन्द्रादि लोकपाल विराजमान थे । यही नहीं—अग्नि, आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, विश्वेदेव तथा यक्ष, किंनर, गन्धर्व आदि

सभी वहाँ मौजूद थे। श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजासे गाण्डीवधारी अर्जुन और बायीं भुजासे हलायुध बलराम प्रकट हो गये। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा प्रद्युम्न आदि अन्धक एवं वृष्णिवंशी यादव उनकी पीठेमेंसे प्रकट हुए तथा अपने अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्जित होकर श्रीकृष्णके आगे खड़े हो गये। शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष एवं खड्ग आदि सब दमकते हुए आयुध भी श्रीकृष्णकी भुजाओंमें सुशोभित हो गये। उनके नेत्रों, नथुनों तथा कानके छिद्रोंमेंसे भीषण अग्निकी लपटें निकलने लगीं तथा रोमकूपोंमेंसे सूर्यकी-सी किरणें फूटने लगीं।

श्रीकृष्णके ऐसे भयानक रूपको देखकर उपस्थित सभी राजा लोग भयके मारे काँपने लगे और उन्होंने अपनी-अपनी आँखें मूँद लीं। केवल आचार्य द्रोण, भीष्मपितामह, महात्मा विदुर एवं सञ्जय तथा तपोधन ऋषि ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। उनको भगवान्ने दिव्यदृष्टि दे दी थी। उस समय देवता दुन्दुभि बजाने और आकाशसे फूल बरसाने लगे। धृतराष्ट्रकी प्रार्थनापर भगवान्ने उन्हें भी दिव्यदृष्टि-सम्पन्न कर दिया और वे भगवान्के उस चमत्कारी विग्रहको देखकर चकित हो गये। थोड़ी ही देरमें भगवान्ने अपने उस दिव्य विग्रहको समेट लिया और तत्काल सभाभवनमेंसे उठकर चल दिये (उद्योग० १३१ । १—२४)। श्रीकृष्णकी भगवत्ताका इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा ?

(५)

भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतामें तो भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा कूट-कूटकर भरी हुई है। वहाँ तो अर्जुनके खुले शब्दोंमें

अपने श्रीमुखसे समझाते हैं कि 'मैं अजन्मा, अविनाशी ईश्वर हूँ। साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंके विनाश तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं समय-समयपर अवतार लेता रहता हूँ' (४। ६—८)। यही नहीं, वे यह भी बतलाते हैं कि 'जो मेरे जन्म-कर्मोंकी दिव्यताको तत्त्वसे जान लेता है वह जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिये छूट जाता है (४। ९) इसीसे यह मालूम होता है कि श्रीकृष्ण हमलोगोंकी भाँति जन्मने-मरनेवाले साधारण मनुष्य नहीं थे। जो स्वयं बार-बार जन्मता और मरता है, उसके जन्मका रहस्य जानकर कोई जन्म-मरणसे कैसे छूटेगा। आगे चलकर वे बतलाते हैं कि 'सारा जगत् मुझीसे उत्पन्न होता है और मुझीमें विलीन हो जाता है, मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है' (७। ६-७)। स्पष्ट शब्दोंमें वे अर्जुनको समझाते हैं कि 'मैं अपनी योगमायासे अपनी भगवत्ताको छिपाये रहता हूँ; इसीसे अज्ञानी लोग मुझे पहचान नहीं पाते और मुझ अजन्मा और अविनाशीको जन्मने-मरनेवाला मनुष्य मान बैठते हैं' (७। २५)। श्रीकृष्ण जब अपने दिव्य विग्रहसे इस भूतलपर विद्यमान थे, उस समय भी कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, दुर्योधन आदि अनेक ऐसे व्यक्ति मौजूद थे; जो उन्हें साधारण मनुष्य समझकर उनकी अवहेलना कर बैठते थे। ऐसी दशामें आजकलके लोग उनकी अनुपस्थितिमें उनके विषयमें अनेक प्रकारकी ऊँची-नीची कल्पनाएँ अथवा कुतर्क करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

इतना ही नहीं अपनी अतुल महिमाको प्रत्यक्ष करानेके लिये श्रीकृष्ण अर्जुनको कृपापूर्वक अपने विश्वरूपका दर्शन कराते हैं। अर्जुनने

देखा कि उनके शरीरसे हजारों सूर्योंकी आभा निकल रही है (११ । १२); सारे देवता, ऋषि एवं अन्यान्य भूतसमुदाय उनके शरीरमें मौजूद हैं (११ । १५); उनके अनेक भुजाएँ, पेट, मुख और नेत्र हैं; वे सब ओरसे अनन्त हैं, उनका आदि, मध्य, अन्त—कुछ भी नहीं दिखायी देता (११ । १६)। अर्जुनने यह भी देखा कि भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि कौरव-पक्षके बड़े-बड़े योद्धा उनकी भयानक दाढ़ोंमें पिसे जा रहे हैं (११ । २७) और सारे लोक उनके मुँहमें समा रहे हैं (११ । ३०)। श्रीकृष्णके इस विकराल रूपको देखकर अर्जुन भयभीत होकर उनकी स्तुति करने लगते हैं और मित्रके नाते अबतक जो उनके साथ समानताका बर्ताव करते आये थे, उसके लिये उनसे क्षमा माँगते हैं (११ । ४१-४२, ४४)। अर्जुनको भयभीत देखकर भगवान् अपने उस कालरूपको समेट लेते हैं और पुनः श्यामसुन्दररूपमें उनके सामने प्रकट हो जाते हैं (११ । ५१)। इस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको यह प्रत्यक्ष करके दिखा दिया कि जो उनके सामने त्रिभुवनमोहन श्यामसुन्दरके रूपमें सदा प्रकट रहते थे, जगत् भी वे ही बने हुए हैं और वे ही जगत्से परे रहकर उसे बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। उन्हें इस प्रकार यथार्थरूपमें जानना, देखना और पाना—उनकी भक्तिसे ही सम्भव है (११ । ५४)। अतएव भगवान् अन्तमें अर्जुनको यही उपदेश देते हैं कि 'तू मेरा ही चिन्तन कर, मुझसे ही प्रेम कर, मेरा ही भजन-पूजन कर तथा और सबका भरोसा छोड़कर मेरी ही शरणमें आ जा' (१८ । ६५-६६)।

यही भगवद्गीताका अन्तिम उपदेश है। श्रीकृष्णका भी वास्तविक स्वरूप वही है, जो भगवद्गीतामें व्यक्त हुआ है। वे जगत्से अतीत कूटस्थ आत्मासे भी श्रेष्ठ पूर्णतम पुरुषोत्तम हैं (१५। १८)। उनका यह रूप अनन्यभावसे उनके शरण होनेसे ही समझमें आता है; अतः श्रीकृष्ण क्या हैं, यह समझनेके लिये हमें अपनी बुद्धिका अभिमान छोड़कर उनकी शरण ग्रहण करनी पड़ेगी। उनके शरणापन्न होनेपर अर्जुनकी भाँति वे अपना स्वरूप स्वयं समझा देंगे। तब अर्जुनके ही स्वरमें स्वर मिलाकर हम कह उठेंगे—'प्रभो ! तुम्हारी कृपासे मेरा अज्ञान दूर हो गया, तुम्हारा वास्तविक स्वरूप मेरी समझमें आ गया। अब मैं सन्देहरहित होकर जो तुम कहोगे, वही आँख मूँदकर करूँगा' (१८। ७३)। इसके बाद हमारे द्वारा जो कुछ भी चेष्टा होगी, वह प्रभु-प्रेरित ही होगी। हम सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करेंगे। यही गीताकी परम नैष्कर्म्यसिद्धि है। ऐसे लोगोंके लिये ही भगवान्ने कहा है कि वे सारे जगत्का संहार करके भी कुछ नहीं करते (१८। १७)। वे भगवान्के हाथके यन्त्र बन जाते हैं।

(६)

कुरुवृद्ध पितामह भीष्म भी भगवान्के एक ऐसे ही यन्त्र थे। अर्जुनके बाणोंसे मर्माहत होकर शर-शय्यापर पड़े हुए वे इच्छानुसार शरीर छोड़नेके लिये उत्तरायणके सूर्यकी बाट देख रहे थे। युद्ध समाप्त होनेके बाद जब युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो गया, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण समस्त पाण्डवोंको साथ लेकर भीष्मके मुखसे सबको धर्मका उपदेश सुनानेके लिये कुरुक्षेत्रके मैदानमें गये।

श्रीकृष्णको आया देखकर भीष्म हर्षसे गद्गद हो गये और बड़े प्रेमसे उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्णने भी भीष्मकी बड़ी प्रशंसा की और यह कहते हुए कि 'तुम्हारे शरीर छोड़कर इस लोकसे जानेके साथ ही सारा ज्ञान भी यहाँसे विदा हो जायगा'* पाण्डवोंको ज्ञानोपदेश देनेकी प्रार्थना की।

भीष्मने कहा—'प्रभो! मेरा मन तो बाणोंकी पीड़ासे खिन्न हो रहा है, अङ्ग-अङ्गमें वेदना हो रही है तथा प्रतिभाशक्ति लुप्त हो गयी है। मेरे मर्मस्थानोंमें आग-सी लग रही है, मेरी वाणी रुकी-सी जाती है। ऐसी दशामें मैं उपदेश कैसे दे सकूँगा। मुझे तो दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रह गया है। मैं तो केवल आपकी शक्तिसे ही जी रहा हूँ। इसलिये नाथ! आप मुझे क्षमा करें और पाण्डवोंको स्वयं उपदेश देनेकी कृपा करें; क्योंकि सारे शास्त्रोंके उद्गम स्थान तो आप ही हैं। आपके सामने बोलता हुआ बृहस्पति भी हिचकेगा औरोंकी तो बात ही क्या है। जैसे गुरुकी उपस्थितिमें शिष्य उपदेश नहीं दे सकता, उसी प्रकार आपके रहते मुझ-जैसा मनुष्य कैसे उपदेश दे सकता है' (शान्ति० ३ । १३)। इसपर श्रीकृष्णने भीष्मको वरदान दिया कि अब तुम्हें न ग्लानि होगी, न मूर्च्छा होगी, न दाह होगी, न पीड़ा होगी और न भूख-प्यास ही सतायेगी। तुम्हें मेरी कृपासे सब ज्ञान अपने-आप भासने लगेंगे और तुम्हारी बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुणमें स्थित रहेगी। उस समय व्यास

---

* अमुं च लोकं त्वयि भीष्म याते ज्ञानानि नङ्क्ष्यन्त्यखिलेन वीर ॥
(शान्ति० ५१ । १७)

आदि अनेक महर्षि भी वहाँ उपस्थित थे। सबने वेदमन्त्रों एवं स्तोत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा की, आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई।*

दूसरे दिनसे भीष्मने अपना उपदेश आरम्भ किया। श्रीकृष्णकी कृपासे उनका दाह, मोह, थकावट, ग्लानि और पीड़ा सब एक साथ नष्ट हो गये।† उनकी वाणी और मनमें बल आ गया। फिर तो उन्होंने वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्ध धर्म, दानधर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर लगातार कई दिनोंतक उपदेश दिया। अन्तमें सूर्य जब उत्तरायणमें आ गये, तब महात्मा भीष्मने भगवान् श्रीकृष्णके सामने योगधारणासे शरीर त्याग दिया और दिव्य लोकमें चले गये। उस समय देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई। पाण्डवोंने विधिवत् उनके और्ध्वदैहिक संस्कार किये।

(७)

इस प्रकार धर्मराजको हस्तिनापुरके राज्यमें प्रतिष्ठित कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये। रास्तेमें उन्हें महातेजस्वी

---

* ततस्ते व्याससहिताः सर्व एव महर्षयः।
ऋग्यजुःसामसहितैर्वचोभिः कृष्णमर्चयन्॥
ततः सर्वार्तवं दिव्यं पुष्पवर्षं नभस्तलात्।
पपात यत्र वार्ष्णेयः सगाङ्गेयः सपाण्डवः॥
(शान्ति० ५२। २२-२३)

† दाहो मोहः श्रमश्चैव क्लमो ग्लानिस्तथा रुजा।
तव प्रसादाद् वार्ष्णेय सद्यः प्रतिगतानि मे॥
(५४। १७)

उत्तङ्क ऋषि मिले। श्रीकृष्णके मुखसे कौरवोंके विनाशकी बात सुनकर उत्तङ्कको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और प्रिय थे। तुमने शक्ति रहते भी उनकी रक्षा नहीं की, उन्हें बलपूर्वक युद्धसे रोका नहीं; इसलिये मैं तुम्हें शाप दूँगा।' श्रीकृष्णने कहा—'कोई भी पुरुष तपके बलसे मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता, अतः आप अपने क्रोधको सँभालिये। मैं जानता हूँ कि आप तपस्वी एवं गुरुभक्त हैं, अतएव मैं आपके तपका नाश नहीं करना चाहता।' इसके अनन्तर श्रीकृष्णने दयापूर्वक उन्हें बतलाया कि 'समस्त भूतोंका रचनेवाला और संहार करनेवाला मैं ही हूँ। जब-जब युग-परिवर्तन होता है, तब-तब मैं प्रजाकी हितकामनासे भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेकर धर्मकी स्थापना करता हूँ। जब मैं जिस योनिमें प्रकट होता हूँ, तब मैं उसी योनिके अनुरूप व्यवहार करता हूँ। इस समय मैं मनुष्य बना हुआ हूँ, अतएव मनुष्यका-सा व्यवहार करता हूँ। मैंने मनुष्यकी भाँति दीनतापूर्वक कौरवोंसे सन्धिके लिये प्रार्थना की तथा भय भी दिखलाया, परन्तु उन लोगोंने मोहवश मेरी बात न सुनी, अतएव वे सब मारे गये। परन्तु युद्धमें लड़कर मरनेसे उन सबोंने अच्छी गति प्राप्त की है' (आश्वमेधिकपर्व ५४। १५–२१)। इसके बाद उत्तङ्ककी प्रार्थनापर श्रीकृष्णने उन्हें अपने विश्वरूपका दर्शन कराया और फिर द्वारकाको लौट गये।

(८)

उत्तङ्ककी भाँति श्रीकृष्णको एक बार गान्धारीके भी कोपका शिकार बनना पड़ा था। युद्ध-समाप्तिके बाद अपने मृत बान्धवोंका

अग्निसंस्कार करने तथा उन्हें जलाञ्जलि देनेके लिये राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों तथा गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी आदि समस्त कुरुवंशकी स्त्रियोंको साथ लेकर कुरुक्षेत्रके मैदानमें गये हुए थे। वहाँ इन लोगोंने देखा कि पुत्र, भाई, पिता, पतियोंकी लाश जमीनपर पड़ी हुई हैं और मांसाहारी पशु-पक्षी उनके मांसको नोच-नोचकर खा रहे हैं। उस भयानक दृश्यको देखकर कुरुवंशकी सभी स्त्रियाँ पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और आर्तनाद करने लगीं। पतिपरायणा गान्धारी भी शोकके वेगको न सँभाल सकनेके कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो वह श्रीकृष्णकी ओर रोषभरी दृष्टिसे देखती हुई कहने लगी—'श्रीकृष्ण! तुम चाहते तो इस भयङ्कर नर-संहारको रोक सकते थे। परंतु शक्ति रहते भी तुमने इसे रोका नहीं। अतः पतिकी सेवा करके मैंने जो कुछ तपका सञ्चय किया है, उसके बलपर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार कौरवोंके नाशकी तुमने उपेक्षा की उसी प्रकार तुमने अपने ही सम्बन्धियोंके नाशके कारण बनोगे। आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम्हारे सजातीय मन्त्री एवं पुत्रोंका नाश हो जायगा और तुम स्वयं वनमें विचरते हुए साधारणसे उपायसे अनाथकी भाँति मारे जाओगे और लोग इस बातको जान भी न पायेंगे।'

श्रीकृष्ण चाहते तो गान्धारीके शापको भी व्यर्थ कर सकते थे। परंतु उन्हें यादवोंका विनाश अभीष्ट था। महाभारत-युद्धसे उनके अवतारके उद्देश्य—भूभारहरणकी अधिकांशमें पूर्ति हो चुकी थी। यादवोंका संहार कराकर उन्हें उस यज्ञकी पूर्णाहुति

करनी थी। परन्तु उनके रहते और किसीकी सामर्थ्य न थी कि वह यादवोंका बाल भी बाँका कर सके। इसलिये गान्धारीके शापको निमित्त बनाकर उन्होंने परस्पर युद्धके द्वारा अपने बान्धवोंका नाश कराना ही ठीक समझा। इसीलिये उन्होंने गान्धारीके असाधारण पातिव्रत-बलका आदर करते हुए उसके शापको सहर्ष अङ्गीकार किया (स्त्री० २५ । ४८–५०) और समय आनेपर सारे यादव-कुलको आपसमें ही लड़ाकर मरवा दिया।

(९)

इस प्रकार अपने अवतारका प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्‌ने परमधाममें पधारनेका निश्चय किया और गान्धारीके शापको चरितार्थ करनेके लिये वे इन्द्रिय, वाणी और मनको सर्वथा रोककर समाधिमें स्थित हो गये।* उसी समय उन्हींकी प्रेरणासे जरा नामका एक उग्र शिकारी शिकारकी खोजमें उधर आ निकला। उसने मृगके धोखेसे समाधिकी दशामें निश्चेष्ट पड़े हुए श्रीकृष्णके एक पैरके तलुवेमें बाणका प्रहार किया। पास आनेपर जब उसे अपनी भूल मालूम हुई, तब उसने भयभीत होकर श्रीकृष्णके दोनों चरण पकड़ लिये। श्रीकृष्ण उसे आश्वासन देते हुए तथा अपनी अतुल प्रभासे पृथ्वी एवं आकाशको दमकाते हुए अपने दिव्यधाममें चले गये। उस समय इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध एवं अप्सराओंके सहित मुख्य-मुख्य गन्धर्व—ये सब उनको लेनेके लिये आये (मौसल०

* स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥
(मौसल० ४ । २१)

४।२२—२६)। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपने लोकपावन जगन्मङ्गळ चरित्रोंसे भक्तोंको आनन्दित करते हुए तथा दुष्टोंका संहारके बहाने उद्धार करते हुए अपनी अवतार-लीला समाप्त की।

इधर जब पाण्डवोंने यादवोंके विनाश तथा श्रीकृष्णके परमधामगमनकी बात सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने भी अपने पौत्र अभिमन्युकुमार परीक्षित्को राजगद्दीपर बिठाकर तथा धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सुको उसकी देखभालके लिये नियुक्त कर हिमालयके लिये प्रस्थान किया। हिमालयको लाँघकर वे आगे मेरुपर्वतकी ओर बढ़ने लगे। इसी बीचमें क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन एवं भीम आयु शेष हो जानेके कारण रास्तेमें ही गिर पड़े। अकेले धर्मराज एक कुत्तेको लेकर आगे बढ़े और सदेह स्वर्ग पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देवनदी गङ्गामें स्नान किया और वहीं अपने मनुष्यशरीरको त्यागकर दिव्य शरीर धारण किया। उसी दिव्य शरीरसे वे भगवान्के परमधाममें गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्मरूप (चिन्मय शरीर) धारण किये श्रीकृष्णको देखा। चक्रादि उनके आयुध दिव्य पुरुष-विग्रह धारण करके उनकी सेवा कर रहे थे। तेजस्वी वीर अर्जुन भी उनकी सेवामें मौजूद थे।

यही है श्रीकृष्णका स्वरूप और यह है उनके शरणागत होकर उनके चरणोंमें निश्छल प्रीति करनेका सुमधुर फल! श्रीकृष्ण नित्य हैं। वे आज भी अपने भक्तोंको दर्शन देकर उनके साथ क्रीड़ा कर उन्हें आनन्द देते हैं। हम भी चाहें तो उनके अभय चरणोंकी शरण ग्रहण कर सदाके लिये अभय हो सकते हैं। बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!!!

२—महाभारतके कुछ आदर्श पात्र

(१) महात्मा भीष्म

महात्मा भीष्म प्रसिद्ध कुरुवंशी महाराज शान्तनुके पुत्र थे। ये गङ्गादेवीसे उत्पन्न हुए थे। वसु नामक देवताओंमें 'द्यौ' नामके नवम वसु ही महर्षि वसिष्ठके शापसे भीष्मके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने कुमारावस्थामें ही साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन तथा अस्त्रोंका अभ्यास कर लिया था। अस्त्रोंका अभ्यास करते हुए उन्होंने एक बार अपने बाणोंके प्रभावसे गङ्गाकी धाराको ही रोक दिया था। इन्हें बचपनमें लोग देवव्रत कहते थे।

एक दिन राजर्षि शान्तनु वनमें विचर रहे थे। उनकी दृष्टि एक सुन्दरी कैवर्तराजकी कन्यापर पड़ी, जिसका नाम सत्यवती था और उसपर वे आसक्त हो गये। उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। सत्यवती थी तो एक राजकन्या, परन्तु वह कैवर्तराजके घर पली थी। उसके पिता कैवर्तराजने उसके विवाहके लिये राजाके सामने यह शर्त रक्खी कि उसके गर्भसे जो पुत्र हो, वही राज्यका अधिकारी हो। राजाने उसकी यह शर्त मंजूर नहीं की; परन्तु वे उस कन्याको भी न भुला सके। वे उसीको पानेकी चिन्तामें उदास रहने लगे। देवव्रतको जब उनकी उदासीका कारण ज्ञात हुआ तो वे स्वयं कैवर्तराजके पास गये और उससे स्वयं अपने पिताके लिये कन्याकी याचना की। उन्होंने उसकी शर्त मंजूर करते हुए सबके सामने यह प्रतिज्ञा की कि 'इसके गर्भसे जो पुत्र

होगा, वही हमारा राजा होगा। परन्तु कैवर्तराजको इतनेपर भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि देवव्रतका वचन तो कभी अन्यथा नहीं होनेका; परन्तु इनका पुत्र राज्यका अधिकारी हो सकता है। बुद्धिमान् देवव्रत उसका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने उसी समय यह दूसरी कठिन प्रतिज्ञा की कि 'मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा।' कुमार देवव्रतकी इस भीष्म-प्रतिज्ञाको सुनकर देवताओंने पुष्पवर्षा की और तभीसे उन्हें लोग 'भीष्म' कहने लगे। भीष्मने सत्यवतीको ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। भीष्मका यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पुत्रको इच्छामृत्युका वरदान दिया। इस प्रकार भीष्मने जीवनके प्रारम्भमें ही पिताकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये संसारके सामने अलौकिक त्यागका आदर्श स्थापित किया। जिस राज्यके लिये उनकी दो ही पीढ़ी बाद उन्हींके बेटों-पोतोंमें तथा उन्हींकी मौजूदगीमें भीषण संहारकारी महायुद्ध हुआ, उसी राज्यको उन्होंने बात-की-बातमें अपने पिताकी एक मामूली-सी इच्छापर न्योछावर कर दिया। जिन कामिनी-काञ्चनके लिये संसारके इतिहासमें न जाने कितनी बार खून-खराबा हुआ है और राज्य-के-राज्य ध्वंस हो गये हैं, उनका सदाके लिये तृणवत् परित्याग कर उन्होंने एक विरक्त महात्मा-सा आचरण किया। धन्य पितृभक्ति!

सत्यवतीके गर्भसे महाराज शान्तनुके दो पुत्र हुए। बड़ेका नाम था चित्राङ्गद और छोटेका विचित्रवीर्य। अभी चित्राङ्गद जवान नहीं हो पाये थे कि राजा शान्तनु इस लोकसे चल बसे। चित्राङ्गद

राजा हुए, परन्तु वे कुछ दिन बाद गन्धर्वोंके साथ युद्धमें मारे गये। विचित्रवीर्य भी अभी बालक ही थे, अतः वे भीष्मकी देख-रेखमें राज्यका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद भीष्मको विचित्रवीर्यके विवाहकी चिन्ता हुई। उन्हीं दिनों काशीनरेशकी तीन कन्याओंका स्वयंवर होने जा रहा था। भीष्म अकेले ही रथपर सवार हो काशी पहुँचे। इन्होंने अपने भाईके लिये बलपूर्वक कन्याओंको हरकर अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें हस्तिनापुर ले चले। इसपर स्वयंवरके लिये एकत्र हुए सभी राजा लोग इनपर टूट पड़े, परन्तु उनकी एक भी न चली। इन्होंने अकेले ही सबको परास्त कर दिया और कन्याओंको लाकर विचित्रवीर्यके सुपुर्द कर दिया। उस समय संसारको इनके अलौकिक पराक्रम तथा अस्त्र-कौशलका प्रथम बार परिचय मिला।

भीष्म काशिराजकी जिन तीन कन्याओंको हरकर ले आये थे उनमें सबसे बड़ी कन्या अम्बा मन-ही-मन राजा शाल्वको वर चुकी थी। भीष्मको जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अम्बाको वहाँसे विदा कर दिया और शेष दो कन्याओंका विचित्रवीर्यसे विवाह कर दिया। परंतु विचित्रवीर्य अधिक दिन जीवित न रहे। विवाहके कुछ ही वर्ष बाद वे क्षय रोगके शिकार हो इस संसारसे चल बसे। उनके कोई सन्तान न थी। फलतः कुरुवंशके उच्छेदका प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। भीष्म चाहते तो वे आसानीसे राज्यपर अधिकार कर सकते थे। प्रजा उनके अनुकूल थी ही। वंशरक्षाके लिये विवाह करनेमें भी अब उनके सामने कोई अड़चन नहीं थी,

परन्तु बड़े-से-बड़ा प्रलोभन तथा आवश्यकता भी भीष्मको अपने वचनसे डिगा नहीं सकती थी । सत्यवतीके पितासे की हुई प्रतिज्ञाको दुहराते हुए एक समय उन्होंने कहा था—'मैं त्रिलोकीका राज्य, ब्रह्माका पद और इन दोनोंसे अधिक मोक्षका भी परित्याग कर सकता हूँ; पर सत्यका त्याग नहीं कर सकता । पाँचों भूत अपने-अपने गुणोंको त्याग दें, चन्द्रमा अपनी शीतलता छोड़ दें; और तो क्या स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें, परन्तु मैं अपनी सत्यप्रतिज्ञा छोड़नेका विचार भी नहीं कर सकता ।' प्रतिज्ञाका पालन हो तो ऐसा हो ।

इधर अम्बाको शाल्यने स्वीकार नहीं किया । वह न इधरकी रही न उधरकी । लज्जाके मारे वह पिताके घर भी न जा सकी । अपनी इस दुर्दशाका कारण भीष्मको समझकर वह उन्हें मन-ही-मन कोसने लगी और उनसे बदला लेनेका उपाय सोचने लगी । अपने नाना राजर्षि होत्रवाहनकी सलाहसे वह जमदग्निनन्दन परशुरामकी शरणमें गयी और उनसे अपने दुःखका कारण निवेदन किया । भीष्मने परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी थी । उन्होंने भीष्मको कुरुक्षेत्रमें बुलाकर कहा कि 'इस कन्याका बलपूर्वक स्पर्श करके तुमने इसे दूषित कर दिया है, इसीलिये शाल्वने इसे स्वीकार नहीं किया । अतः अब तुम्हींको इसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना होगा । भीष्मने उनकी बात स्वीकार नहीं की । उन्होंने कहा कि 'इस कन्याने ही मुझसे कहा था कि मैं शाल्वकी हो चुकी हूँ । ऐसी हालतमें मैं उसे कैसे रख सकता था ! जिसका दूसरे

पुरुषपर प्रेम है, उसे कोई धार्मिक पुरुष कैसे रख सकता है ?' अब तो परशुराम आगबबूला हो गये। उन्होंने कहा—'भीष्म! तुम जानते नहीं कि मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर दिया था ?' भीष्मने कहा—'गुरुजी! उस समय भीष्म पैदा नहीं हुए थे।' यह सुनकर उन्होंने भीष्मको युद्धके लिये ललकारा। भीष्मने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली, फिर तो गुरु-शिष्यमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। तेईस दिनोंतक लगातार युद्ध होता रहा। परन्तु किसीने भी हार नहीं मानी। अन्तमें देवताओंने तथा मुनियोंने बीचमें पड़कर युद्ध बन्द करा दिया। इस प्रकार भीष्मने परशुरामकी बात भी न मानकर अपने सत्यकी रक्षा की तथा अपने अद्भुत पराक्रमसे परशुराम-जैसे अद्वितीय धनुर्धरके भी छक्के छुड़ा दिये। सत्य प्रतिज्ञा और वीरताकी पराकाष्ठा हो गयी।

महाभारत-युद्धमें कौरवपक्षके सर्वश्रेष्ठ योद्धा भीष्म ही थे। अतएव प्रथम सेनानायक होनेका गौरव इन्हींको प्राप्त हुआ। पाण्डव एवं कौरव दोनोंके पितामह होनेके नाते इनका दोनोंसे ही समान प्रेम एवं सहानुभूति थी तथा दोनोंका ही समानरूपमें हित चाहते थे। फिर भी यह जानकर कि धर्म एवं न्याय पाण्डवोंके ही पक्षमें है। ये पाण्डवोंके साथ विशेष सहानुभूति रखते थे और हृदयसे उनकी विजय चाहते थे; परन्तु हृदयसे पाण्डवोंके पक्षपाती होनेपर भी युद्धमें कभी पाण्डवोंके साथ रियायत नहीं की और प्राणपणसे उन्हें जीतनेकी चेष्टा की। युद्धके अठारह दिनोंमेंसे दस दिनोंतक अकेले भीष्मने कौरवोंका सेनानायकत्व किया और इस बीचमें पाण्डव-

पक्षकी बहुत-सी सेनाका संहार कर डाला। वृद्ध होते हुए भी युद्धमें इन्होंने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि दो बार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनकी रक्षाके लिये शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा होते हुए भी इनके मुकाबलेमें खड़ा होना पड़ा। अर्जुनका बल क्षीण होते हुए देख एक बार तो वे चक्र लेकर इनके सामने दौड़े और दूसरी बार चाबुक लेकर उन्होंने भीष्मको ललकारा और इस प्रकार भक्तके प्राणोंकी रक्षा करते हुए दूसरे भक्तके गौरवको बढ़ाकर अपनी उभयतोमुखी भक्तवत्सलताका परिचय दिया। अन्तमें पाण्डवोंने जब देखा कि भीष्मके रहते कौरवोंपर विजय पाना असम्भव-सा है, तब उन्होंने स्वयं पितामहसे उनकी मृत्युका उपाय पूछा और उन्होंने दया करके उसे बता दिया। उन्होंने बताया कि 'द्रुपदकुमार शिखण्डी स्त्रीरूपमें जन्मा था, इसलिये यद्यपि वह अब पुरुषके रूपमें बदल गया है, फिर भी मेरी दृष्टिमें वह स्त्री ही है। ऐसी दशामें उसपर मैं शस्त्र नहीं उठा सकता। वह यदि मेरे सामने युद्ध करने आयेगा तो मैं शस्त्र नहीं चलाऊँगा। उस समय अर्जुन मुझे मार सकता है।' क्षत्रियधर्मके पालन और वीरताका उदाहरण इससे बढ़कर और क्या होगा?

जिस समय युद्धमें मर्माहत होकर भीष्म धराशायी हुए, उस समय उनका रोम-रोम बाणोंसे बिंध गया था। उन्हीं बाणोंपर वे सो गये, धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। उस समय सूर्य दक्षिणायनमें थे। दक्षिणायनको देहत्यागके लिये उपयुक्त काल न समझकर वे अयन-परिवर्तनके समयतक उसी शरशय्यापर पड़े रहे, क्योंकि पिताके वरदानसे मृत्यु उनके अधीन थी। भीष्मके गिरते ही उस दिन युद्ध

बन्द हो गया। कौरव तथा पाण्डव वीर भीष्मजीको घेरकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। भीष्मजीका सारा शरीर बाणोंपर तुला हुआ था। केवल उनका सिर नीचे लटक रहा था। उसके लिये उन्होंने कोई सहारा माँगा। लोगोंने उत्तमोत्तम तकिये लाकर उनके सामने रख दिये, परन्तु उन्हें वे पसन्द नहीं आये। तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—'बेटा! तुम क्षत्रियधर्मको जानते हो, तुम मेरे अनुरूप तकिया लाकर दो।' अर्जुन उन वीरशिरोमणिके अभिप्रायको समझ गये। वीरोंके इशारे वीर ही समझ सकते हैं। उन्होंने बाण मारकर भीष्मजीके मस्तकको ऊँचा कर दिया, उन बाणोंपर उनका मस्तक टिक गया। इधर दुर्योधनने बाण निकालनेमें कुशल वैद्योंको भीष्मजीकी चिकित्साके लिये बुलाया, परन्तु भीष्मपितामहने उन सबको सम्मानपूर्वक लौटा दिया। उस वीरगतिको पाकर उन्होंने चिकित्सा कराना अपना अपमान समझा। सब लोग उनकी असाधारण धर्मनिष्ठा और साहस देखकर दंग रह गये। उस समय भी युद्ध बन्द कराने तथा दोनों पक्षोंमें शान्तिस्थापन करनेकी इन्होंने पूरी चेष्टा की, परन्तु उसमें ये सफल नहीं हुए। दैवका ऐसा ही विधान था। उसे कौन टाल सकता था।

बाणोंकी असह्य वेदनासे भीष्मजीका गला सूख रहा था। उनका सारा शरीर जल रहा था। उन्होंने पीनेके लिये पानी माँगा। लोगोंने झारियोंमें भरकर शीतल और सुगन्धित जल उनके सामने उपस्थित किया। भीष्मने उसे लौटा दिया। उन्होंने कहा कि पहले भोगे हुए मानवीय भोगोंको अब मैं स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय मैं शरशय्यापर पड़ा हूँ। तब उन्होंने

अर्जुनको बुलाकर कहा—'बेटा ! तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो ।' अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर अपने भाथेमेंसे एक दमकता हुआ बाण निकाला और उसे पर्जन्यास्त्रसे संयोजितकर भीष्मके बगलवाली जमीनपर मारा । उसी समय सबके देखते-देखते पृथ्वीमेंसे दिव्य जलकी एक धारा निकली और वह ठीक भीष्मजीके मुखपर गिरने लगी । अमृतके समान उस जलको पीकर भीष्मजी तृप्त हो गये और अर्जुनके उस कर्मकी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की । उसी समयसे भीष्मजीने अन्न-जलका त्याग कर दिया और फिर जितने दिन वे जीवित रहे, बाणोंकी मर्मान्तक पीड़ाके साथ-साथ भूख-प्यासकी असह्य वेदना भी सहते रहे । इस प्रकार उन्होंने वीरताके साथ-साथ धैर्य एवं सहनशक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी ।

महामना भीष्म आदर्श पितृभक्त, आदर्श सत्यप्रतिज्ञ एवं आदर्श वीर ही नहीं थे, वे शास्त्रोंके महान् ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वरके तत्त्वको जाननेवाले एवं महान् भगवद्भक्त भी थे । उनके अगाध ज्ञानकी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसा की और यहाँतक कह दिया कि आपके इस लोकसे चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; संसारमें जो सन्देहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है, इत्यादि । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा एवं शक्तिसे इन्होंने युधिष्ठिरको लगातार कई दिनोंतक वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्धधर्म, दानधर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उपदेश दिया, जो महाभारतके शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्वमें संगृहीत है । साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए तथा धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज युधिष्ठिरकी धर्मविषयक शङ्काओं-

का निवारण करना भीष्मका ही काम था। इनका उपदेश सुननेके लिये व्यास आदि महर्षि भी उपस्थित हुए थे।

भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्य एवं प्रभावका ज्ञान जैसा भीष्मको था, वैसा उस समय बहुत कम लोगोंको था। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनको इन्होंने कई बार श्रीकृष्णकी महिमा सुनाई थी। राजसूय यज्ञमें अग्रपूजाके लिये श्रीकृष्णको ही सर्वोत्तम पात्र सिद्ध करते हुए इन्होंने भरी सभामें श्रीकृष्णकी महिमा गायी थी और उन्हें साक्षात् ईश्वर बतलाया था। श्रीकृष्ण जब अर्जुनकी ओरसे चक्र लेकर दौड़े तो इन्होंने उनके हाथोंसे मरनेमें अपना गौरव समझकर शस्त्रोंद्वारा ही उनकी पूजा करनेके लिये उनका आवाहन किया। इन्होंने युधिष्ठिरको भगवान् विष्णुका जो सहस्रनामस्तोत्र सुनाया, उससे इनकी भगवद्भक्ति तथा भगवत्तत्त्वका ज्ञान टपका पड़ता है। आज भी उस विष्णुसहस्रनामका भक्तोंमें बड़ा आदर है। भगवान् शङ्कराचार्यने गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्रोंकी भाँति उसपर भी विस्तृत भाष्य लिखा है। उनकी भक्तिका ही यह फल था कि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अन्त समयमें उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान-सदाचार—जिस ओरसे भी हम भीष्मके चरित्रपर दृष्टि डालते हैं उसी ओरसे हम उसे आदर्श पाते हैं। भीष्मकी कोटिके महापुरुष संसारके इतिहासमें इने-गिने ही पाये जाते हैं। यद्यपि भीष्म अपुत्र ही मरे फिर भी सारे त्रैवर्णिक हिन्दू आजतक पितरोंका तर्पण करते समय इन्हें जल देते हैं। यह गौरव भारतके इतिहासमें और किसी भी मनुष्यको प्राप्त नहीं है। इसीलिये सारा जगत् आज भी इन्हें पितामहके नामसे पुकारता है। भीष्मकी-सी अपुत्रता बड़े-बड़े पुत्रवानोंके लिये भी ईर्ष्याकी वस्तु है।

---

(२) धर्मराज युधिष्ठिर

महाराज युधिष्ठिर भी भीष्मकी ही भाँति अत्यन्त उच्चकोटिके महापुरुष थे। ये साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। इसीसे लोग इन्हें धर्मराजके नामसे पुकारते हैं। इनमें धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता, दयालुता और अविचल प्रेम आदि अनेक लोकोत्तर गुण थे। ये अपने शील, सदाचार तथा विचारशीलताके कारण बचपनमें ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। जब ये बहुत छोटे थे, तभी इनके पिता महात्मा पाण्डु स्वर्गवासी हो गये। तभीसे यह अपने ताऊ धृतराष्ट्रको ही पिताके तुल्य मानकर उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी किसी भी आज्ञाको टालते न थे। परन्तु धृतराष्ट्र अपने कुटिल स्वभावके कारण इनके गुणोंकी प्रशंसा सुन-सुनकर मन-ही-मन इनसे कुढ़ने लगे। इनका पुत्र दुर्योधन चाहता था कि किसी तरह पाण्डव कुछ दिनके लिये हस्तिनापुरसे हट जायँ तो उनकी अनुपस्थितिमें उनके पैतृक अधिकारको छीनकर स्वयं राजा बन बैठूँ। उसने अपने अन्धे एवं प्रज्ञाहीन पिताको पट्टी पढ़ाकर इसके लिये राजी कर लिया। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको बुलाकर उन्हें मेला देखनेके बहाने वारणावत भेजनेका प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने उनकी आज्ञा समझकर उसपर कोई आपत्ति नहीं की और चुपचाप अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों भाई वारणावत चले गये। इन्हें जला डालनेके लिये वहाँ दुर्योधनने एक लाक्षाभवन तैयार कराया था। उसीमें उन्हें रहनेकी आज्ञा हुई। चाचा विदुरकी सहायतासे ये लोग वहाँसे किसी प्रकार

प्राण बचाकर भागे और जंगलकी शरण ली । पीछेसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मरा समझकर हस्तिनापुरके राज्यपर चुपचाप अधिकार कर लिया ।

कुछ दिनोंके बाद द्रौपदीके स्वयंवरमें जब पाण्डवोंका रहस्य खुला, तब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यह पता लगा कि पाण्डव अभी जीवित हैं । तब तो धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलवा लिया और अपने पुत्रोंके साथ उनका झगड़ा मिटा देनेके लिये आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहनेका प्रस्ताव उनके सामने रक्खा । युधिष्ठिरने उनकी यह आज्ञा भी स्वीकार कर ली और वे अपने भाइयोंके साथ खाण्डवप्रस्थमें रहने लगे । वहाँ इन्होंने अपनी एक अलग राजधानी बसा ली, जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया । वहाँ इन्होंने एक राजसूय यज्ञ किया, जिसमें बड़े-बड़े राजाओंने आकर इन्हें बहुमूल्य उपहार दिये और इन्हें अपना सम्राट् स्वीकार किया ।

परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने वहाँ भी इन्हें नहीं रहने दिया । दुर्योधन इनके वैभवको देखकर जलने लगा । उसने एक विशाल सभाभवन तैयार करके पाण्डवोंको जुएके लिये आमन्त्रित किया । जुएको बुरा समझते हुए भी धृतराष्ट्रकी आज्ञा मानकर युधिष्ठिरने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वहाँ दुर्योधनके मामा शकुनिकी कपटभरी चालोंसे अपना सर्वस्व हार बैठे । यहाँतक कि भरी सभामें राजरानी द्रौपदीकी बड़ी भारी फजीहत की गयी । फिर भी धृतराष्ट्रके प्रति युधिष्ठिरका वही भाव बना रहा । धृतराष्ट्रने भी उन्हें उनका सारा धन और राज्य लौटा दिया और उन्हें वापस इन्द्रप्रस्थ भेज

*

दिया। परन्तु दुर्योधनको यह सहन नहीं हुआ। उसने धृतराष्ट्रको समझा-बुझाकर इस बातके लिये राजी कर लिया कि पाण्डवोंको दूत भेजकर फिरसे बुलाया जाय और उनसे वनवासकी शर्तपर पुनः जूआ खेला जाय। युधिष्ठिर जूएका दुष्परिणाम एक बार देख चुके थे तथा कौरवोंकी नीयतका भी पता चल गया था। फिर भी अपने ताऊकी आज्ञाको वे टाल नहीं सके और बीचमेंसे ही लौट आये। अबकी बार भी युधिष्ठिर ही हारे और फलतः उन्हें सब कुछ छोड़कर अपने भाइयों तथा राजरानी द्रौपदीके साथ बारह वर्षके वनवास तथा एक वर्षके अज्ञातवासके लिये जाना पड़ा। पिताके आज्ञापालन-रूप धर्मके निर्वाहके लिये उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया। धन्य पितृभक्ति!

महाराज युधिष्ठिर बड़े ही धर्मभीरु एवं सहनशील थे। वे सब प्रकारकी हानि सह सकते थे; परन्तु धर्मकी हानि उन्हें सह्य नहीं थी। प्रथम बार जूएमें जब वे अपने चारों भाइयोंको तथा अपने-आपको एवं द्रौपदीतकको हार गये और कौरवलोग भरी सभामें द्रौपदीका तिरस्कार करने लगे, उस समय भी धर्मपाससे बँधे रहनेके कारण उन्होंने चूँ तक नहीं किया और चुपचाप सब कुछ सह लिया। कोई सामान्य मनुष्य भी अपनी आँखोंके सामने अपनी स्त्रीकी इस प्रकार दुर्दशा होते नहीं देख सकता। उन्हींके भयसे उनके भाई भी कुछ नहीं बोले और जी मसोसकर रह गये। ये लोग चाहते तो बलपूर्वक उस अमानुषी अत्याचारको रोक सकते थे। परन्तु यह सोचकर कि धर्मराज द्रौपदीको स्वेच्छासे दाँवपर

रखकर हार गये हैं, ये लोग चुप रहे । जिस द्रौपदीको इनके सामने कोई आँख उठाकर भी देख लेता तो उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते, उसी द्रौपदीकी दुर्दशा इन्होंने अपनी आँखोंसे देखकर भी उसका प्रतिकार नहीं किया । युधिष्ठिर यह भी जानते थे कि शकुनिने उन्हें कपटपूर्वक जीता है । फिर भी उन्होंने अपनी ओरसे धर्मका त्याग करना उचित नहीं समझा । उन्होंने सब कुछ सहकर भी सत्य और धर्मकी रक्षा की । धर्मप्रेम और सहनशीलताका इससे बड़ा उदाहरण जगत्‌में शायद ही कहीं मिले ।

जब पाण्डव लोग दूसरी बार भी जूएमें हार गये और वनमें जाने लगे, उस समय हस्तिनापुरकी प्रजाको बड़ा दुःख हुआ । सब लोग कौरवोंको कोसने लगे और नगरवासी बहुत बड़ी संख्यामें घर-परिवारको छोड़कर इनके साथ चलनेके लिये इनके पीछे हो लिये । उस समय भी धर्मराजने कौरवोंके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा और सब लोगोंको समझा-बुझाकर किसी प्रकार लौटाया । फिर भी बहुत-से ब्राह्मण जबर्दस्ती इनके साथ हो लिये । उस समय धर्मराजको यह चिन्ता हुई कि 'इतने ब्राह्मण मेरे साथ चल रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी ?' इन्हें अपने कष्टोंकी तनिक भी परवा नहीं थी, परन्तु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकते थे । अन्तमें इन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके उनसे एक ऐसा पात्र प्राप्त किया जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता । उसीसे ये वनमें रहते हुए भी अतिथि ब्राह्मणोंको भोजन करा कर पीछे स्वयं भोजन करते । वनवासके कष्ट भोगते हुए भी

इन्होंने आतिथ्य-धर्मका यथोचित पालन किया। महाराज युधिष्ठिरके इसी धर्म-प्रेमसे आकर्षित होकर बड़े-बड़े महर्षि इनके वनवासके समय इनके पास आकर रहते और यज्ञादि नाना प्रकारके धर्मानुष्ठान करते।

महाराज युधिष्ठिर अजातशत्रुके नामसे प्रसिद्ध थे। उनका वास्तवमें किसीके साथ वैर नहीं था। शत्रुओंके प्रति भी उनके हृदयमें सदा सद्भाव ही रहता था। शत्रु भी उनकी दृष्टिमें सेवा और सहानुभूतिके ही पात्र थे। अपकार करनेवालेका भी उपकार करना यही तो सन्तका सबसे बड़ा लक्षण है। 'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'— गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह उक्ति महाराज युधिष्ठिरमें पूरी तरह चरितार्थ होती थी। एक बारकी बात है—जब पाण्डव द्वैतवनमें थे, घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वनवासी पाण्डवोंको अपने वैभवसे जलानेके पापपूर्ण उद्देश्यसे उस वनमें पहुँचा, वहाँ जलक्रीड़ाके विचारसे वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा जहाँ महाराज युधिष्ठिर कुटी बनाकर रहते थे। सरोवरको गन्धर्वोंने पहलेसे ही घेर रक्खा था। उनके साथ दुर्योधनकी मुठभेड़ हो गयी। बस, दोनों ओरसे बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। विजय गन्धर्वोंकी ओर रही। उन लोगोंने रानियों-सहित दुर्योधनको कैद कर लिया। जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंको आज्ञा दी कि तुम सब लोग जाकर बलपूर्वक राजा दुर्योधनको छुड़ा

लाओ। माना कि ये लोग हमारे शत्रु हैं, परंतु इस समय विपत्तिमें हैं। इस समय इनके अपराधोंको भुलाकर इनकी सहायता करना ही हमारा धर्म है। शत्रु हैं तो क्या, आखिर हैं तो हमारे भाई ही। हमारे रहते दूसरे लोग इनकी दुर्दशा करें, यह हम लोग कैसे देख सकते हैं।' बस, फिर क्या था अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और दुर्योधनको भाइयों तथा रानियों-सहित उनके चङ्गुलसे छुड़ा लिया। दुर्योधनकी दुरभिसन्धिको जानकर देवराज इन्द्रने ही दुर्योधनको बाँध ले आनेके लिये गन्धर्वोंको भेजा था। महाराज युधिष्ठिरके विशाल हृदयको देखकर वे सब दंग रह गये। धन्य अजातशत्रुता!

एक समयकी बात है, द्रौपदीको आश्रममें अकेली छोड़कर पाण्डव वनमें चले गये थे, पीछेसे दुर्योधनका बहनोई सिन्धुराज जयद्रथ उधर आ निकला। द्रौपदीके अनुपम रूपलावण्यको देखकर उसका मन बिगड़ गया। उसने द्रौपदीके सामने अपना पापपूर्ण प्रताव रक्खा, किन्तु द्रौपदीने उसे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया। तब तो उसने द्रौपदीको खींचकर जबर्दस्ती अपने रथपर बिठा लिया और उसे ले भागा। पीछेसे पाण्डवोंको जब जयद्रथकी शैतानीका पता लगा तो उन्होंने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे जा दबाया। पाण्डवोंने बात-की-बातमें उसकी सारी सेनाओंको तहस-नहस कर डाला। पापी जयद्रथने भयभीत होकर द्रौपदीको रथसे नीचे उतार दिया और स्वयं प्राण बचाकर भागा। भीमसेनने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे

पकड़कर धर्मराजके सामने ला उपस्थित किया। धर्मराजने उसे सम्बन्धी समझकर दयापूर्वक छोड़ दिया और इस प्रकार अपनी अद्भुत क्षमाशीलता एवं दयालुताका परिचय दिया।

महाराज युधिष्ठिर बड़े भारी विद्वान्, नीतिज्ञ और धर्मज्ञ तो थे ही; उनमें समता भी अद्भुत थी। एक समयकी बात है—जिस वनमें पाण्डवलोग रहते थे, वहाँ एक ब्राह्मणके अरणिसहित मन्थनकाष्ठसे जो किसी वृक्षकी शाखापर टँगा हुआ था, एक हिरन अपना सींग खुजलाने लगा। यह काष्ठ उसके सींगमें फँस गया। हिरन उसे लेकर भागा। मन्थनकाष्ठके न रहनेसे अग्निहोत्रमें बाधा आती देख ब्राह्मण पाण्डवोंके पास आया और उनसे यह मन्थन-काष्ठ ला देनेकी प्रार्थना की। धर्मराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयोंको साथ लेकर मृगके पीछे भागे, परन्तु वह देखते-देखते उनकी आँखोंसे ओझल हो गया। पाण्डव बहुत थक गये थे, प्यास उन्हें अलग सता रही थी। धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल पानीकी तलासमें गये। थोड़ी ही दूरपर उन्हें एक सुन्दर जलाशय मिला। उसके समीप जाकर ज्यों ही वे जल पीनेके लिये झुके कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी —'पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो, तब जल पीना।' परन्तु नकुलको बड़ी प्यास लगी थी। उन्होंने आकाश-वाणीकी कोई परवा न की। फलतः पानी पीते ही वे निर्जीव होकर जमीनपर लोट गये। पीछेसे धर्मराजने क्रमशः सहदेव, अर्जुन और भीमसेनको भेजा; परंतु उन तीनोंकी भी वही दशा हुई। अन्तमें धर्मराज स्वयं उस तालाबपर पहुँचे। उन्होंने भी वही आवाज

सुनी और साथ ही अपने चारों भाइयोंको निश्चेष्ट होकर जमीन-पर पड़े देखा। इतनेमें उन्हें एक विशालकाय यक्ष दीख पड़ा। उसने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना जल पीनेके कारण तुम्हारे भाइयोंकी यह दशा हुई है। यदि तुम भी ऐसी अनधिकार चेष्टा करोगे तो मारे जाओगे।' युधिष्ठिर उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेको तैयार हो गये। यक्षने जो-जो प्रश्न युधिष्ठिरसे किये, उन सबका समुचित उत्तर देकर युधिष्ठिरने यक्षका अच्छी तरह समाधान कर दिया। इनके उत्तरोंसे प्रसन्न होकर यक्ष बोला—'राजन्! अपने भाइयोंमेंसे जिस किसीको तुम जिलाना चाहो, उसे मैं जीवित कर दूँ।' धर्मराजने नकुलको जीवित देखना चाहा। कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि 'मेरे पिताकी दो भार्याएँ थीं कुन्ती और माद्री। मेरी दृष्टिमें वे दोनों समान हैं। मैं चाहता हूँ कि वे दोनों पुत्रवती बनी रहें। कुन्तीका पुत्र तो मैं मौजूद हूँ ही; मैं चाहता हूँ कि माद्रीका भी एक पुत्र बना रहे। इसीलिये मैंने भीम और अर्जुनको छोड़कर उसे जिलानेकी प्रार्थना की है।' युधिष्ठिरकी बुद्धिमत्ता तथा धर्मसत्ताकी परीक्षाके लिये स्वयं धर्मने यह लीला की थी। उनकी इस अद्भुत समताको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना परिचय देकर चारों भाइयोंको जीवित कर दिया। धर्मने उन्हें यह भी कहा कि 'मैं ही मृग बनकर उस ब्राह्मणके मन्थनकाष्ठको ले गया था; लो यह मन्थनकाष्ठ तुम्हारे सामने है। युधिष्ठिरने वह मन्थनकाष्ठ उस ब्राह्मणको ले जाकर दे दिया।

युधिष्ठिर जैसे सदाचार-सम्पन्न थे वैसे ही विनयी भी थे। वे समयोचित व्यवहारमें बड़े कुशल थे! गुरुजनोंकी मान-मर्यादाका सदा ध्यान रखते थे। कठिन-से-कठिन समयमें भी वे शिष्टाचारकी मर्यादाको नहीं भूलते थे। महाभारत-युद्धके आरम्भमें जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये संनद्ध खड़ी थीं, उस समय उन्होंने सबसे पहले शत्रुसेनाके बीचमें जाकर पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं कृपाचार्य तथा मामा शल्यके चरणोंमें प्रणाम किया और आशीर्वाद माँगा। उनके इस विनयपूर्ण एवं शिष्टजनोचित व्यवहारसे वे सभी गुरुजन बड़े प्रसन्न हुए और उनकी हृदयसे विजय-कामना की। चारोंने ही अन्यायी कौरवोंकी ओरसे लड़नेके लिये बाध्य होनेपर खेद प्रकट किया और इसे अपनी कमजोरी बतलायी। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने, युधिष्ठिरने इस आदर्श व्यवहारका अनुमोदन किया।

युधिष्ठिरकी सत्यवादिता तो जगद्विख्यात थी। सब कोई जानते थे कि युधिष्ठिर भय अथवा लोभवश कभी असत्य नहीं बोलते। उनकी सत्यवादिताका ही फल था कि उनके रथके पहिये सदा पृथ्वीसे चार अङ्गुल ऊँचे रहा करते थे। जीवनमें केवल एक बार इन्होंने असत्य भाषण किया। उन्होंने द्रोणाचार्यके सामने अश्वत्थामा हाथीके मारे जानेके बहाने झूठ-मूठ यह कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' इसी एक बारकी सत्यच्युतिके फलस्वरूप इनके रथके पहिये पृथ्वीसे सटकर चलने लगे और इन्हें मुहूर्तभरके लिये कल्पित नरकका दृश्य भी देखना पड़ा।

युधिष्ठिरकी उदारता भी अलौकिक थी। जब कौरवोंने किसी प्रकार भी इनका राज्य लौटाना मंजूर नहीं किया तो इन्होंने केवल

पाँच गाँव लेकर संतोष करना स्वीकार कर लिया और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्योधनको यह कहला भेजा कि 'यदि वह हमें हमारे इच्छानुसार केवल पाँच गाँव देना मंजूर कर लें तो हम युद्ध न करें।' परन्तु दुर्योधनने इन्हें सूईकी नोकके बराबर जमीन देना स्वीकार नहीं किया। तब इन्हें बाध्य होकर युद्ध छेड़ना पड़ा। इतना ही नहीं, जब दुर्योधनकी सारी सेना मर-खप गयी और वह स्वयं एक तालाबमें जाकर छिप रहा, उस समय इन्होंने उसके पास जाकर उसे अन्तिम बार युद्धके लिये ललकारते हुए यहाँतक कह दिया कि 'हममेंसे जिस-किसीके साथ तुम युद्ध कर सकते हो। हममेंसे किसी एकपर भी तुम द्वन्द्व-युद्धमें विजय पा लोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा।' भला, इस प्रकारकी शर्त कोई दूसरा कर सकता है ! जिस दुर्योधनका गदायुद्धमें भीमसेन भी, जो पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान् एवं गदायुद्धमें प्रवीण थे, मुकाबला करते हिचकते थे उसके साथ यह शर्त कर लेना कि 'हममेंसे किसी एकको तुम हरा दोगे तो राज्य तुम्हारा हो जायगा, युधिष्ठिर-जैसे महानुभावका ही काम था। अन्तमें भीमसेनके साथ उसका युद्ध होना निश्चित हुआ और भीमसेनके द्वारा वह मारा गया।

इतना ही नहीं, युद्ध-समाप्तिके बाद जब युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो गया और धृतराष्ट्र-गान्धारी इन्हींके पास रहने लगे, उस समय इन्होंने उनके साथ ऐसा सुन्दर बर्ताव किया कि उन्हें अपने पुत्रोंकी मृत्युका दुःख भूल गया। इन्होंने दोनोंको इतना सुख पहुँचाया, जितना उन्हें अपने पुत्रोंसे भी नहीं मिला था। ये सारा राज-काज उन्हींसे पूछकर करते थे और राज-काज करते हुए भी

इनकी सेवाके लिये बराबर समय निकाला करते थे तथा इनकी माता कुन्ती, सम्राज्ञी द्रौपदी तथा अपनी अन्य बहुओंके साथ देवी गान्धारीकी सेवा किया करती थीं। ये इस बातका सदा ध्यान रखते थे कि उनके सामने कभी कोई ऐसी बात न हो जिससे उनका पुत्र-शोक उमड़ पड़े। अन्तमें जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने अपनी शेष आयु वनमें बितानेका निश्चय किया, उस समय युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ। ये स्वयं उनके साथ वन जानेको तैयार हो गये। बड़ी कठिनतासे व्यासजीने आकर उन्हें समझाया, तब कहीं ये धृतराष्ट्र-गान्धारीको वन भेजनेपर राजी हुए। फिर भी कुन्तीदेवी तो अपनी जेठ-जेठानीके साथ ही गयीं और अन्त समयतक उनकी सेवामें रहीं और उनके साथ ही प्राणत्याग भी किया। वन जानेसे पहले धृतराष्ट्रने अपने मृत पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंका विधिपूर्वक अन्तिम बार श्राद्ध करना चाहा और उन्हींके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको अपरिमित दान देना चाहा! युधिष्ठिरको जब उनकी इच्छा मालूम हुई तो इन्होंने विदुरजीके द्वारा यह कहलाया कि 'अर्जुनसहित मेरा प्राणपर्यन्त सर्वस्व आपके अर्पण है।' एवं उनकी इच्छासे भी अधिक खुले हाथों खर्च करनेका प्रबन्ध कर दिया। फिर तो धृतराष्ट्रने बड़े विधि-विधानसे अपने सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको भरपूर दान दिया। उस समय महाराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके आज्ञानुसार धन और रत्नोंकी नदी-सी बहा दी। जिसके लिये सौकी आज्ञा हुई, उसे हजार दिया गया। जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनको जाने लगे, उस समय पाण्डवलोग अपनी रानियोंके साथ पैदल ही बड़ी दूरतक उन्हें पहुँचाने गये। जिन

धृतराष्ट्रकी बदौलत पाण्डवोंको भारी-भारी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा, जिनके कारण उन्हें अपने पैतृक-अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा और कितनी बार वनवासके कष्ट उठाने पड़े, जिनकी उपस्थितिमें उनके पुत्रोंने सती-शिरोमणि द्रौपदीका भरी सभामें घोर अपमान किया और जिन्होंने उन्हें दर-दरका भिखारी बना दिया और पाँच गाँवतक देना मंजूर नहीं किया—जिसके फलस्वरूप दोनों ओरसे इतना भीषण नर-संहार हुआ—उन्हीं धृतराष्ट्रके प्रति इतना निश्छल प्रेम-भाव रखना और अन्ततक उन्हें सुख पहुँचानेकी पूरी चेष्टा करना युधिष्ठिर-जैसी महान् आत्माका ही काम था। वैरीके प्रति ऐसा सद्व्यवहार जगत्के इतिहासमें कम ही देखनेको मिलेगा।

महाराज युधिष्ठिरकी शरणागतवत्सलता तथा प्रेम तो और भी विलक्षण था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमन तथा यादवोंके संहारकी बात जब इन्होंने सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने सोचा कि जब हमारे परम आत्मीय तथा हितू श्रीकृष्ण ही इस धरातलपर न रहे, जिनकी बदौलत हमने सब कुछ पाया था, तो फिर हमारे लिये यह राज्य-सुख किस कामका और इस जीवनको ही रखनेसे क्या प्रयोजन! श्रीकृष्णकी बात तो अलग रही, वे तो पाण्डवोंके जीवनप्राण एवं सर्वस्व ही थे, उनके ऊपर तो उनका सब कुछ निर्भर था; कौरवोंके विनाशपर ही उन्हें इतना दुःख हुआ था कि विजय तथा राज्य-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें हर्ष मनानेके बदले वे सब कुछ छोड़कर वन जानेको तैयार हो गये थे। बड़ी कठिनतासे भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यास आदिने

उन्हें समझा-बुझाकर राज्याभिषेकके लिये तैयार किया था। भीष्मपितामहने भी धर्मका उपदेश देकर इनका शोक दूर करनेकी चेष्टा की तथा भीष्मजीकी आज्ञा पाकर इन्होंने राज्य भी किया, परन्तु स्वजनवधसे होनेवाली ग्लानि इनके चित्तसे सर्वथा दूर नहीं हुई। अब श्रीकृष्णके परमधामगमनकी बात सुनकर तो इन्होंने वन जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अर्जुनके पौत्र कुमार परीक्षित्को राजगद्दी-पर बिठाकर तथा कृपाचार्य एवं धृतराष्ट्रपुत्र युयुत्सुको उनकी देख-भालमें नियुक्तकर वे अपने चारों भाई तथा द्रौपदीको साथ लेकर हस्तिनापुरसे चल पड़े। पृथ्वी-प्रदक्षिणाके उद्देश्यसे कई देशोंमें घूमते हुए वे हिमालयको पारकर मेरुपर्वतकी ओर बढ़ रहे थे। रास्तेमें देवी द्रौपदी तथा इनके चारों भाई एक-एक करके क्रमशः गिरते गये। इनके गिरनेकी भी परवा न कर युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। इतनेमें ही स्वयं देवराज इन्द्र रथपर चढ़कर इन्हें लेनेके लिये आये और इन्हें रथपर चढ़ जानेको कहा। युधिष्ठिरने अपने भाइयों तथा पतिप्राणा देवी द्रौपदीके बिना अकेले रथपर बैठना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रके यह विश्वास दिलानेपर कि 'वे लोग तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं, इन्होंने रथपर चढ़ना स्वीकार किया। परन्तु इनके साथ एक कुत्ता भी था, जो शुरूसे ही इनके साथ चल रहा था। युधिष्ठिरने चाहा कि वह कुत्ता भी उनके साथ चले। इन्द्रके आपत्ति करनेपर उन्होंने साफ़ कह दिया कि स्वामिभक्त कुत्तेको छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग जानेके लिये तैयार नहीं हूँ।' यह कुत्ता और कोई नहीं था, स्वयं धर्म ही युधिष्ठिरकी परीक्षाके लिये उनके साथ हो लिये थे। युधिष्ठिरकी इस अनुपम शरणागतवत्सलताको देखकर वे अपने असली रूपमें

प्रकट हो गये और युधिष्ठिरको रथमें बिठाकर इन्द्र एवं अन्य देवताओं तथा देवर्षियोंके साथ ऊपरके लोकोंमें चले गये। उस समय देवर्षि नारदने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि 'महाराज युधिष्ठिरसे पहले कोई भौतिक शरीरसे स्वर्ग गया हो, ऐसा सुननेमें नहीं आया।' ऊपर जाते हुए युधिष्ठिरने नक्षत्रों एवं तारोंको देवताओंके लोकोंके रूपमें देखा। फिर भी देवराज इन्द्रसे उन्होंने यही कहा कि 'जहाँ मेरे भाई-बन्धु तथा देवी-द्रौपदी हों, वहीं मुझे ले चलिये; वहीं जानेपर मुझे शान्ति मिलेगी, अन्यत्र नहीं। जहाँ मेरे भाई नहीं हैं वह स्वर्ग भी मेरे किस कामका!' धन्य बन्धुप्रेम!

आगे जाकर जब देवराज इन्द्रकी मायासे उन्हें नरकका दृश्य दिखायी पड़ा और वहाँ इन्होंने अपने भाइयोंके कराहने और रोनेकी आवाज सुनी, साथ ही इन्होंने लोगोंको यह कहते भी सुना कि 'महाराज! थोड़ा रुक जाइये, आपके यहाँ रहनेसे हमें नरककी पीड़ा नहीं सताती' तब तो ये वहीं रुक गये और जो देवदूत उन्हें वहाँ ले आया था, उससे उन्होंने कहा कि 'हम तो यहीं रहेंगे; जब हमारे रहनेसे यहाँके जीवोंको सुख मिलता है तो यह नरक ही हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर है।' धन्य दयालुता!

थोड़ी ही देर बाद वह दृश्य गायब हो गया और वहाँ इन्द्र आदि देवता आ पहुँचे। वे सब इनके इस सुन्दर भावसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बतलाया कि 'तुमने छलसे गुरु द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसीलिये तुम्हें छलसे नरकका दृश्य दिखाया गया था। तुम्हारे सब भाई दिव्यलोकमें पहुँच गये हैं।' उसके बाद युधिष्ठिर भगवान्‌के परमधाममें गये और वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके उसी रूपमें दर्शन किये, जिस रूपमें वे पहले उन्हें

मर्त्यलोकमें देखते आये थे। वहीं श्रीकृष्णकी परिचर्या करते हुए अर्जुनको भी देखा। अपने भाइयों तथा देवी द्रौपदीको भी उन्होंने दूसरे-दूसरे स्थानोंमें देखा। अन्तमें वे अपने पिता धर्मके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार युधिष्ठिरने अपने धर्मके बलसे दुर्लभ गति पायी।

युधिष्ठिरकी पवित्रताका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहाँका वातावरण अत्यन्त पवित्र हो जाता था। जिस समय पाण्डव अज्ञातरूपमें राजा विराटके यहाँ रह रहे थे, उस समय कौरवोंने इनका पता लगाना चाहा। उसी प्रसङ्गमें भीष्मपितामहने, जो पाण्डवोंके प्रभावको भलीभाँति जानते थे, उन्हें बतलाया कि राजा युधिष्ठिर जिस नगरमें या राष्ट्रमें होंगे, वहाँ जनता भी दानशील, प्रियवादिनी, जितेन्द्रिय एवं लज्जाशील होगी। जहाँ वे रहते होंगे, वहाँके लोग संयमी, सत्यपरायण तथा धर्ममें तत्पर होंगे। उनमें ईर्ष्या, अभिमान, मत्सर आदि दोष नहीं होंगे। वहाँ हर समय वेद-ध्वनि होती होगी, यज्ञ होते होंगे, ठीक समयपर वर्षा होती होगी, वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण तथा सब प्रकारके भयों एवं उपद्रवोंसे शून्य होगी, वहाँ गायें अधिक एवं हृष्ट-पुष्ट होंगी इत्यादि। यही नहीं, हम ऊपर देख चुके हैं कि उनकी सन्निधिसे नरकके प्राणियोंतकको सुख-शान्ति मिलती थी। राजा नहुषने जिन्हें महर्षि अगस्त्यके शापसे अजगरकी योनि प्राप्त हुई थी और जिन्होंने उसी रूपसे भीमसेनको अपने चङ्गुलमें फँसा लिया था, युधिष्ठिरके दर्शन तथा उनके साथ सम्भाषण करनेमात्रसे अजगरकी योनिसे छूटकर पुनः स्वर्ग प्राप्त किया। ऐसे पुण्यश्लोक महाराज युधिष्ठिरके चरित्रका जितना भी हम मनन करेंगे उतने ही पवित्र होंगे।

'धर्मो विवर्द्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन।'



(३) वीरवर अर्जुन

अर्जुन साक्षात् नर-ऋषिके अवतार थे। ये भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, सखा एवं प्रेमी थे तथा उनके हाथके एक उत्तम यन्त्र थे। इनको निमित्त बनाकर भगवान्ने महाभारत-युद्धमें बड़े-बड़े योद्धाओंका संहार किया और इस प्रकार अपने अवतारके अन्यतम उद्देश्य भू-भारहरणको सिद्ध किया। इस बातको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके विश्वरूपदर्शनके प्रसङ्गमें यह कहते हुए स्वीकार किया है कि 'ये सब तुम्हारे शत्रु मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं, तुम्हें इनके वधमें केवल निमित्त बनना होगा' (११ । ३३)। इनकी भक्ति तथा मित्रताको भी भगवान्ने गीतामें ही 'भक्तोऽसि मे सखा चेति,' 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' आदि शब्दोंमें स्वीकार किया है। जिसे स्वयं भगवान् अपना भक्त और प्यारा मानें और उद्घोषित करें, उसके भक्त होनेमें दूसरे किसी प्रमाणकी क्या आवश्यकता है। गीताके अन्तमें 'करिष्ये वचनं तव' यह कहकर अर्जुनने स्वयं भगवान्के हाथका यन्त्र बननेकी प्रतिज्ञा की है और महाभारतके अनुशीलनसे इस बातका पर्याप्त प्रमाण भी मिलता है कि उन्होंने अन्ततक इस प्रतिज्ञाका भलीभाँति निर्वाह किया। गीतासे ही इस बातका भी प्रमाण मिलता है कि ये भगवान्को अपना सखा मानते थे और उनके साथ बराबरीका नाता भी रखते थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन अनेक बार भिन्न-भिन्न स्थानोंमें महीनों साथ रहे थे और ऐसे अवसरोंपर स्वाभाविक ही उनका उठना-बैठना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सोना-लेटना साथ ही होता था और ऐसी स्थितिमें उनमें परस्पर

किसी प्रकारका सङ्कोच नहीं रह गया था। दोनोंका एक-दूसरेके साथ खुला व्यवहार था, अभिन्नहृदयता थी, दोनोंका एक-दूसरेके अन्तःपुरमें भी निःसङ्कोच आना-जाना, उठना-बैठना होता था, एक-दूसरेसे किसी प्रकारका पर्दा नहीं था। इन दोनोंमें कैसा प्रेम था, इसका वर्णन सञ्जयने धृतराष्ट्रको पाण्डवोंका सन्देश कहते समय सुनाया था। युद्धके पूर्व जब सञ्जय कौरवोंका संदेश लेकर उपप्लव्यमें पाण्डवोंके पास गये, उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको उन्होंने किस अवस्थामें देखा, इसका वर्णन करते हुए सञ्जय कहते हैं--'महाराज! आपका सन्देश सुनानेके लिये मैं अर्जुनके अन्तःपुरमें गया। उस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं' इत्यादि।

जब पाण्डव जुएकी शर्तके अनुसार वनमें चले जाते हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आते हैं। उस समय वे अर्जुनके साथ अपनी अभिन्नताका उल्लेख करते हुए कहते हैं—'अर्जुन! तुम एकमात्र मेरे हो और मैं एकमात्र तुम्हारा हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे हैं और जो तुम्हारे हैं, वे मेरे हैं। जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो तुम्हारा प्रेमी है, वह मेरा प्रेमी है। तुम नर हो और मैं नारायण। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, हम दोनों एक हैं।' अर्जुन श्रीकृष्णको कितने प्रिय थे तथा दोनोंमें कैसी अभिन्नता थी—इसका प्रमाण महाभारतकी कई घटनाओंसे

मिलता है। जब अर्जुन अपने वनवासके समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण उनका समाचार पाते ही उनसे मिलनेके लिये द्वारिकासे प्रभासक्षेत्रको जाते हैं और वहाँसे उन्हें रैवतक पर्वतपर ले आकर कई दिन उनके साथ वहीं बिताते हैं। रैवतक पर्वतसे दोनों द्वारका चले आते हैं और द्वारकामें अर्जुन श्रीकृष्णके ही महलोंमें कई दिनोंतक उनके प्रिय अतिथिके रूपमें रहते हैं और रातको दोनों साथ सोते हैं। वहाँ जब श्रीकृष्णको पता चलता है कि अर्जुन उनकी बहिन सुभद्रासे विवाह करना चाहते हैं तो वे उनके बिना पूछे ही इसके लिये अनुमति दे देते हैं और उसे हरकर ले जानेकी युक्ति भी बतला देते हैं। इतना ही नहीं, अपना रथ और हथियार भी उन्हें दे देते हैं एवं सुभद्रा-हरण हो जानेके बाद जब बलरामजी इसका विरोध करते हैं तो वे उन्हें समझा-बुझाकर मना लेते हैं और वहीं द्वारकामें सुभद्राका पाणिग्रहण हो जाता है। यही नहीं, खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रसे यह वरदान माँगते हैं कि उनकी अर्जुनके साथ मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय। खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें ही अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नताका एक और प्रमाण मिलता है। खाण्डववनके भयङ्कर अग्निकाण्डमेंसे मय दानव निकल भागनेकी चेष्टा कर रहा था। अग्निदेव मूर्तिमान् होकर उसे जला डालनेके लिये उसके पीछे दौड़ रहे थे। उनकी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना चक्र लिये उसे मारनेको प्रस्तुत थे। मय दानवने अपने बचनेका कोई उपाय न देखकर अर्जुनकी शरण ली और अर्जुनने उसे अभयदान दे दिया। अब तो

श्रीकृष्णने भी अपना चक्र वापस ले लिया और अग्निदेवने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया। मय दानवके प्राण बच गये। मय दानवने उपकारके बदलेमें अर्जुनकी कुछ सेवा करनी चाही। अर्जुनने कहा—'तुम श्रीकृष्णकी सेवा कर दो, इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।' मय दानव बड़ा निपुण शिल्पी था। श्रीकृष्णने उससे महाराज युधिष्ठिरके लिये एक बड़ा सुन्दर सभाभवन तैयार करवाया। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्ण सदा एक-दूसरेका प्रिय करते रहते थे।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनको प्यार करते थे, उसी प्रकार अर्जुन भी श्रीकृष्णको अपना परम आत्मीय एवं हितू समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी एक अरब नारायणी सेना न लेकर अकेले और निहत्थे श्रीकृष्णको ही सहायकके रूपमें वरण किया। जहाँ भगवान् एवं उनके ऐश्वर्यका मुकाबला होता है, वहाँ सच्चे भक्त ऐश्वर्यको त्यागकर भगवान्का ही वरण करते हैं। श्रीकृष्णने भी उनके प्रेमके वशीभूत होकर युद्धमें उनका सारथ्य करना स्वीकार किया। अर्जुन साथ-ही-साथ अपने जीवनरूप रथकी बागडोर भी उन्हींके हाथोंमें सौंपकर सदाके लिये निश्चिन्त हो गये। फिर तो अर्जुनकी विजय और रक्षा—योग और क्षेम—दोनोंकी चिन्ता सर्वसमर्थ श्रीकृष्णके कन्धोंपर चली गयी। उनकी तो यह प्रतिज्ञा ही ठहरी कि जो कोई अनन्यभावसे उनका चिन्तन करते हुए अपनी सारी चिन्ताएँ उन्हींपर डाल देते हैं, उनके योग-क्षेमका भार वे अपने कन्धोंपर ले लेते हैं। कोई भी अपना भार उनके ऊपर डालकर देख ले।

बस, फिर क्या था! अब तो अर्जुनको जिताने और भीष्म-जैसे दुर्दान्त पराक्रमी वीरोंसे उनकी रक्षा करनेका सारा भार श्रीकृष्ण-

पर आ गया। वैसे विजय तो पाण्डवोंकी पहलेसे ही निश्चित थी; क्योंकि धर्म उनके साथ था। जिस ओर धर्म, उस ओर श्रीकृष्ण और जिस ओर श्रीकृष्ण, उस ओर विजय—यह तो सदाका नियम है। फिर तो युद्धके प्रारम्भमें शत्रुओंको पराजित करनेके लिये अर्जुनसे रणचण्डीका आवाहन एवं स्तवन कराना तथा प्रत्यक्ष दर्शन करके विजयके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त करना, भगवद्गीताके उपदेश तथा विश्वरूपदर्शनके द्वारा उनके मोहका निवारण करना, युद्धमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञाकी परवा न कर भीष्मकी प्रचण्ड बाणवर्षाको रोकनेमें असमर्थ अर्जुनकी प्राणरक्षाके लिये एक बार चक्र लेकर तथा दूसरी बार चाबुक लेकर भीष्मके सामने दौड़ना, भगदत्तके छोड़े हुए सर्वसंहारक वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर ले लेना, रथको पैरोंसे दबाकर कर्णके छोड़े हुए सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना तथा अस्त्रोंसे जले हुए अर्जुनके रथको अपने सङ्कल्पके द्वारा कायम रखना आदि अनेकों लीलाएँ श्रीकृष्णने अर्जुनके योगक्षेमके निर्वाहके लिये कीं।

भीष्मको पाण्डवोंसे लड़ते-लड़ते नौ दिन हो गये थे। फिर भी उनके पराक्रममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आ पायी थी। प्रतिदिन वे पाण्डव-पक्षके हजारों वीरोंका संहार कर रहे थे। उनपर विजय पानेका पाण्डवोंको कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। महाराज युधिष्ठिरने बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें सारी परिस्थिति अपनी नौकाके कर्णधार श्रीकृष्णके सामने रक्खा। श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति असाधारण प्रेम प्रकट होता है। साथ ही अर्जुनके सम्बन्धमें उनकी कैसी ऊँची धारणा थी,

इसका भी पता लगता है। श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज ! आप बिल्कुल चिन्ता न करें। भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको विजय दिखायी देती हो तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीरका मांस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं। अर्जुनने उपप्लव्यमें सबके सामने भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरहसे रक्षा करनी है ! जिस कामके लिये अर्जुन मुझे आज्ञा दें, उसे मुझे अवश्य करना चाहिये। अथवा भीष्मको मारना अर्जुनके लिये कौन बड़ी बात है। राजन् ! यदि अर्जुन तैयार हो जायँ तो वे असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। दैत्य एवं दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायँ तो अर्जुन उन्हें भी परास्त कर सकते हैं, फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है !' सच है,'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' भगवान् जिसके रक्षक एवं सहायक हों, वह क्या नहीं कर सकता ?

पुत्रशोकसे पीड़ित अर्जुन अभिमन्युकी मृत्युका प्रधान कारण जयद्रथको समझकर दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले जयद्रथको मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर बैठते हैं और साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि 'ऐसा न कर सका तो मैं स्वयं जलती हुई आगमें कूद पड़ूँगा।' 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इस वचनके अनुसार अर्जुनकी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका भार भी श्रीकृष्णपर आ पड़ा था। अर्जुन तो उनके भरोसे निश्चिन्त थे। इधर कौरवोंकी ओरसे जयद्रथको बचानेकी पूरी चेष्टा हो रही थी। उसी दिन श्रीकृष्ण आधी रातके

समय ही जाग पड़े और सारथि दारुकको बुलाकर कहने लगे—'दारुक! मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु कोई भी अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता। कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायेगी कि मैं अर्जुनका मित्र हूँ। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मेरा द्वेषी है, जो उनके अनुकूल है, वह मेरे अनुकूल है। तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है। मेरा विश्वास है कि अर्जुन कल जिस-जिस वीरको मारनेका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ अवश्य उनकी विजय होगी।' भला, ऐसे मित्रवत्सल प्रभु जिसके लिये इस प्रकार उद्यत हों, उसको विजयमें क्या सन्देह हो सकता है! दूसरे दिन श्रीकृष्णकी बतायी हुई युक्तिसे जयद्रथको मारकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और सारे संसारने देखा कि श्रीकृष्णकी कृपासे अर्जुनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

कर्ण अर्जुनके साथ शुरूसे ही ईर्ष्या रखता था। दोनों एक-दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे। भीष्मके मरणके बाद भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनके लिये सबसे अधिक भय कर्णसे ही था। उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक अमोघ शक्ति थी, जिसे उसने अर्जुनको मारनेके लिये ही रख छोड़ा था। उस शक्तिके बलपर वह अर्जुनको मरा हुआ ही समझता था। उसका प्रयोग एक ही बार हो सकता था। कर्णको उस शक्तिसे हीन करनेके लिये भगवान्‌ने उसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचसे भिड़ा दिया। उसने ऐसा अद्भुत

पराक्रम दिखाया कि कर्णके प्राणोंपर भी बन आयी। वह उसके प्रहारोंको नहीं सह सका। उसने बाध्य होकर वह इन्द्रदत्त शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी और उसने घटोत्कचका काम तमाम कर दिया। घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंके शिविरमें शोक छा गया। सबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। परन्तु इस घटनासे श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। वे हर्षसे झूमकर नाचने लगे। उन्होंने अर्जुनको गले लगाकर उनकी पीठ ठोंकी; बार-बार गर्जना की। अर्जुनने उनके बेमौके इस प्रकारका आनन्द मनानेका रहस्य जानना चाहा; क्योंकि वे जानते थे कि भगवान्की कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति अगाध प्रेम झलकता है। उन्होंने कहा—अर्जुन! आज सचमुच मेरे लिये बड़े ही आनन्दका अवसर है। कारण जानना चाहते हो? सुनो। तुम समझते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है, अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहते उसके मुकाबलेमें ठहर सकता।' उन्होंने यह भी बतलाया कि मैंने तुम्हारे हितके लिये जरासन्ध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला। ये लोग पहले न मारे गये होते तो इस समय बड़े भयङ्कर सिद्ध होते। हमलोगोंसे द्वेष रखनेके कारण वे लोग अवश्य ही कौरवोंका पक्ष लेते और दुर्योधनका सहारा पाकर वे समस्त भूमण्डलको जीत लेते। उनके समान देव-द्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है।' इसी

प्रसङ्गपर उन्होंने सात्यकिसे यह भी कहा कि 'कौरवपक्षके सब लोग कर्णको यह सलाह दिया करते थे कि अर्जुनके सिवा किसी दूसरेपर शक्तिका प्रयोग न करे और वह भी इसी विचारमें रहता था; परन्तु मैं ही उसे मोहमें डाल देता था। यही कारण है कि उसने अर्जुनपर शक्तिका प्रहार नहीं किया। सात्यके! अर्जुनके लिये वह शक्ति मृत्युरूप है—यह सोच-सोचकर मुझे रातों नींद नहीं आती थी। आज वह घटोत्कचपर पड़नेसे व्यर्थ हो गयी—यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुँहसे छूट गये। मैं अर्जुनकी रक्षा करना जितना आवश्यक समझता हूँ, उतनी अपने माता-पिता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो, तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर जी उठे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। इसीलिये इस रात्रिमें मैंने राक्षस घटोत्कचको ही कर्णसे लड़नेके लिये भेजा था, उसके सिवा दूसरा कोई कर्णको नहीं दबा सकता था।' भगवान्‌के इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन भगवान्‌को कितने प्रिय थे और उनकी वे कितनी सँभाल रखते थे। जो अपनेको भगवान्‌के हाथका यन्त्र बना देता है, उसकी भगवान् इसी प्रकार सँभाल रखते हैं और उसका बाल भी बाँका नहीं होने देते। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुकी शरणको छोड़कर जो और-और सहारे ढूँढ़ते रहते हैं, उनके समान मूर्ख कौन होगा!

द्रोणाचार्यके वधसे अमर्षित होकर वीर अश्वत्थामाने पाण्डवोंके प्रति आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी वर्षा होने लगी और सेनामें चारों ओर आग फैल गयी। अर्जुन अकेले एक अक्षौहिणी सेना लेकर अश्वत्थामाका मुकाबला कर रहे थे। उस अस्त्रके प्रभावसे उनकी सारी सेना इस प्रकार दग्ध हो गयी कि उसका नाम-निशानतक मिट गया; परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरपर आँचतक नहीं आयी। इन दोनों महापुरुषोंको अस्त्रके प्रभावसे मुक्त देखकर अश्वत्थामा चकित और चिन्तित हो गया। अपने हाथका धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहता हुआ रणभूमिसे भाग चला। इतनेमें ही उसे व्यासजी दिखायी दिये। उसने उन्हें प्रणाम किया और उस सर्वसंहारी अस्त्रका श्रीकृष्ण और अर्जुनपर कुछ प्रभाव न पड़नेका कारण पूछा। तब व्यासजीने उसे बताया कि श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं और अर्जुन नरके अवतार हैं, इनका प्रभाव नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्म-मर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं।' व्यासजीकी इन बातोंको सुनकर अश्वत्थामाकी शङ्का दूर हो गयी और उसकी अर्जुन और श्रीकृष्णमें महत्त्व-बुद्धि हो गयी। व्यासजीके इन वचनोंसे भी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता सिद्ध होती है।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके तो कृपापात्र थे ही, भगवान् शङ्करकी भी उनपर बड़ी कृपा थी। युद्धमें शत्रु-सेनाका संहार करते समय वे देखते कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष

उनके आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही उनके शत्रुओंका नाश करते थे, किन्तु लोग समझते थे कि यह अर्जुनका कार्य है। वे त्रिशूल धारण किये रहते थे और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वेद-व्यासजीसे बात होनेपर उन्होंने अर्जुनको बताया कि वे भगवान् शङ्कर ही थे। जिसपर श्रीकृष्णकी कृपा हो, उसपर और सब लोग भी कृपा करें—इसमें आश्चर्य ही क्या है! जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करहिं सब कोई ॥' अस्तु,

भगवान्‌के परमभक्त एवं कृपापात्र होनेके साथ-साथ अर्जुनमें और भी कई गुण थे। क्यों न हों, सूर्यके साथ सूर्य-रश्मियोंकी तरह भक्तिके साथ-साथ दैवी गुण तो आनुषङ्गिक रूपमें रहते ही हैं। ये बड़े धीर, वीर, इन्द्रियजयी, दयालु, कोमलस्वभाव एवं सत्यप्रतिज्ञ थे। इनमें दैवी गुण जन्मसे ही मौजूद थे, इस बातको गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने 'सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि' कह-कर स्वीकार किया है। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने इनकी माताको सम्बोधन करते हुए कहा था, 'कुन्ती! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन एवं भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी एवं इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारा यश बढ़ायेगा। जैसे विष्णुने अपनी माता अदितिको प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा।' यह आकाश-वाणी केवल कुन्तीने ही नहीं, सब लोगोंने सुनी थी। इससे ऋषि-मुनि, देवता और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, पुष्पवर्षा होने लगी। इस प्रकार इनके जन्मके समयसे ही इनकी अलौकिकता प्रकट होने लगी थी। जब ये कुछ

बड़े हुए तो इनके भाइयों तथा दुर्योधनादि धृतराष्ट्रके कुमारोंके साथ-साथ इनकी शिक्षा-दीक्षाका भार पहले कृपाचार्यको और पीछे द्रोणाचार्यको सौंपा गया। सूतपुत्रके नामसे प्रसिद्ध कर्ण भी इन्हींके साथ शिक्षा पाते थे। द्रोणाचार्यके सभी शिष्योंमें शिक्षा, बाहुबल और उद्योगकी दृष्टिसे तथा समस्त शस्त्रोंके प्रयोग, फुर्ती और सफाईमें अर्जुन ही सबसे बढ़े-चढ़े थे। ये द्रोणाचार्यकी सेवा भी बहुत करते थे। इनकी सेवा, लगन और बुद्धिसे प्रसन्न होकर द्रोणाचार्यने एक दिन इनसे कहा था कि बेटा! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि संसारमें तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो।' द्रोणाचार्य-जैसे सिद्ध गुरुकी प्रतिज्ञा क्या कभी असत्य हो सकती है? अर्जुन वास्तवमें संसारके अद्वितीय धनुर्धर निकले।

जब पाण्डव एवं कौरव-राजकुमार अस्त्र-विद्याका अभ्यास पूरा कर चुके और गुरुदक्षिणा देनेका अवसर आया, उस समय गुरु द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंसे कहा—'तुमलोग पाञ्चालराज द्रुपदको युद्धमें पकड़कर ला दो, यही मेरे लिये सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी।' सबने प्रसन्नतासे गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो रथपर सवार होकर द्रुपदनगरपर चढ़ाई कर दी। वहाँ पहुँचनेपर पाञ्चालराजने अपने भाइयोंके साथ इनका मुकाबला किया। पहले अकेले कौरवोंने ही इनपर धावा किया था। परन्तु उन्हें पाञ्चालराजसे हारकर लौटना पड़ा। अन्तमें अर्जुनने भीम और नकुल-सहदेवको साथ लेकर राजा द्रुपदपर आक्रमण किया। बात-की-बातमें अर्जुनने द्रुपदको घर दबाया और उन्हें पकड़कर

द्रोणाचार्यके सामने खड़ा कर दिया। इस प्रकार अर्जुनके पराक्रमकी सर्वत्र धाक जम गयी।

पाण्डव द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार पाकर एकचक्रा नगरीसे द्रुपदनगरीकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उनकी गन्धर्वोंसे मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और उनके राजा अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) को पकड़ लिया। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गयी। द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनने वह काम करके दिखला दिया, जिसे उपस्थित राजाओंमेंसे कोई भी न कर सका था। दुर्योधन, शाल्व, शिशुपाल, जरासंध एवं शल्य आदि अनेक महाबली राजाओं तथा राजकुमारोंने वहाँपर रक्खे हुए धनुषको उठाकर चढ़ानेकी चेष्टा की, परन्तु सभी असफल रहे। अर्जुनने बात-की-बातमें उसे उठाकर उसपर रौंदा चढ़ा दिया और लोगोंके देखते-देखते लक्ष्यको भी वेध दिया। उस समय अर्जुन ब्राह्मणके वेषमें अपनेको छिपाये हुए थे। अतः उन्हें ब्राह्मण समझकर समस्त राजाओंने मिलकर उनका पराभव करना चाहा। परन्तु वे अर्जुन और भीमका बाल भी बाँका न कर सके! उस समय अर्जुन ओर कर्णका बाणयुद्ध और भीम एवं शल्यका गदायुद्ध हुआ। परन्तु अर्जुन और भीमके सामने उनके दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियोंको नीचा देखना पड़ा।

खाण्डवदाहके समय भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखलाया था। जब अग्निदेवताने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे खाण्डववनको जलाना प्रारम्भ किया, उस समय उसकी गर्मीसे सारे देवता त्रस्त

हो देवराज इन्द्रके पास गये। तब इन्द्रकी आज्ञासे दल-के-दल मेघ उस प्रचण्ड अग्निको शान्त करनेके लिये जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे बाणोंके द्वारा जलकी धाराओंको आकाशमें ही रोक दिया और पृथ्वीपर नहीं गिरने दिया। इन्द्रने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे अर्जुनको उत्तर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण और अर्जुनने मिलकर अपने चक्र और तीखे बाणोंके द्वारा देवताओंकी सारी सेनाको तहस-नहस कर डाला। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना कालरूप प्रकट कर दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषको देखकर दङ्ग रह गये। अन्तमें इन्द्रको सम्बोधन करके यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम अर्जुन और श्रीकृष्णको युद्धमें किसी प्रकार भी जीत न सकोगे। ये साक्षात् नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये सबके लिये अजेय हैं। तुम देवताओंको लेकर यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी शोभा है।' आकाशवाणी सुनकर देवराज अपनी सेनाके साथ लौट पड़े और अग्निने देखते-देखते उस विशाल वनको भस्म कर दिया। अर्जुनकी सेवासे प्रसन्न होकर अग्निने उन्हें दिव्य अस्त्र दिये। इन्द्रने भी उनके अस्त्रकौशलसे प्रसन्न होकर उन्हें समय आनेपर अस्त्र देनेकी प्रतिज्ञा की तथा अग्निकी प्रार्थनापर वरुणदेवने उन्हें अक्षय तरकस, गाण्डीव धनुष और वानर-चिह्नयुक्त ध्वजासे मण्डित रथ युद्धसे पहले ही दे दिया था।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे, उस समय एक दिन महर्षि वेदव्यासजी उनके पास आये और

युधिष्ठिरको एकान्तमें ले जाकर उन्होंने समझाया कि अर्जुन नारायणका सहचर महातपस्वी नर है। इसे कोई जीत नहीं सकता, यह अच्युतस्वरूप है। यह तपस्या एवं पराक्रमके द्वारा देवताओंके दर्शनकी योग्यता रखता है। इसलिये तुम इसको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये भगवान् शङ्कर, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और धर्मराजके पास भेजो। यह उनसे अस्त्र प्राप्त करके बड़ा पराक्रम करेगा और तुम्हारा खोया हुआ राज्य वापस ला देगा।' युधिष्ठिरने वेदव्यासजीकी आज्ञा मानकर अर्जुनको उन्हीं महर्षिकी दी हुई मन्त्रविद्या सिखाकर इन्द्रके दर्शनके लिये इन्द्रकील पर्वतपर भेज दिया। वहाँ पहुँचनेपर एक तपस्वीके रूपमें इन्द्रके दर्शन हुए। इन्द्रने इन्हें स्वर्गके भोगों एवं ऐश्वर्यका प्रलोभन दिया, परंतु इन्होंने सब कुछ छोड़कर उनसे अस्त्रविद्या सिखानेका ही आग्रह किया। इन्द्रने कहा—'पहले तुम तपद्वारा भगवान् शङ्करके दर्शन प्राप्त करो उनके दर्शनसे सिद्ध होकर तुम स्वर्गमें आना, तब मैं तुम्हें सारे दिव्य अस्त्र दे दूँगा।' अर्जुन मनस्वी तो थे ही। वे तुरंत ही कठोर तपस्यामें लग गये। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर एक भीलके रूपमें इनके सामने प्रकट हुए। एक जंगली सूअरको लेकर दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया। वे बोले—'अर्जुन! तुम्हारे अनुपम कर्मसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे-जैसा धीर-वीर क्षत्रिय दूसरा नहीं है। तुम तेज और बलमें मेरे ही समान हो। तुम सनातन ऋषि हो। तुम्हें मैं दिव्य ज्ञान देता हूँ, तुम देवताओंको भी जीत सकोगे।' इसके बाद

भगवान् शङ्करने अर्जुनको देवी पार्वतीके सहित अपने असली रूपमें दर्शन देकर विधिपूर्वक पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दी। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवकी कृपा प्राप्तकर वे स्वर्ग जानेकी बात सोच रहे थे कि इतनेमें ही वरुण, कुवेर, यम एवं देवराज—ये चारों लोकपाल वहाँ आकर उपस्थित हुए। यम, वरुण और कुवेरने क्रमशः उन्हें दण्ड, पास एवं अन्तर्धान नामक अस्त्र दिये और इन्द्र उन्हें स्वर्गमें आनेपर अस्त्र देनेको कह गये। इसके बाद इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर अर्जुन स्वर्गलोकमें गये। और वहाँ पाँच वर्ष रहकर इन्होंने अस्त्रज्ञान प्राप्त किया और साथ-ही-साथ चित्रसेन गन्धर्वसे गान्धर्व विद्या सीखी। इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखकर जब अर्जुन सब प्रकारके अस्त्रोंके चलानेमें निपुण हो गये, तब देवराजने उनसे निवातकवच नामक दानवोंका वध करनेके लिये कहा। यह समुद्रके भीतर एक दुर्गम स्थानमें रहते थे। इनकी संख्या तीन करोण बतायी जाती थी। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते थे। अर्जुनने अकेले ही जाकर उन सबका संहार कर डाला। इतना ही नहीं, निवातकवचोंको मारकर लौटते समय उनका कालिकेय एवं पौलोम नामक दैत्योंसे युद्ध हुआ और उनका भी अर्जुनने सफाया कर डाला। इस प्रकार इन्द्रका प्रिय कार्य करके तथा इन्द्रपुरीमें कुछ दिन और रहकर अर्जुन अपने भाइयोंके पास वापस चले आये।

स्वर्गसे लौटकर वनमें तथा एक वर्ष अज्ञातरूपसे विराटनगरमें रहते हुए भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखाया। वनमें इन्होंने

दुर्योधनादिको छुड़ानेके लिये गन्धर्वोंसे युद्ध किया, जिसका उल्लेख युधिष्ठिरके प्रसङ्गमें किया जा चुका है। इसके बाद जब वनवासके बारह वर्ष पूरे हो गये और पाण्डवलोग एक वर्षके अज्ञातवासकी शर्त पूरी करनेके लिये विराटके यहाँ रहने लगे, उस समय इन लोगोंका पता लगानेके लिये दुर्योधनने विराटनगरपर चढ़ाई की। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि सभी प्रधान-प्रधान वीर उसके साथ थे। ये लोग राजा विराटकी साठ हजार गौओंको घेरकर ले चले। तब विराट-कुमार उत्तर बृहन्नला बने हुए अर्जुनको सारथि बनाकर उन्हें रोकनेके लिये गये। कौरवोंकी विशाल सेनाको देखते ही उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये, वह रथसे उतरकर भागने लगा। बृहन्नला (अर्जुन) ने उसे पकड़कर समझाया और उसे सारथि बनाकर स्वयं युद्ध करने चले। उन्होंने बारी-बारीसे कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और दुर्योधनको पराजित किया और भीष्मको भी मूर्छित कर दिया। इसके बाद भीष्म, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य—ये सभी महारथी एक साथ अर्जुनपर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुनने अपने बाणोंकी झड़ीसे सबके छक्के छुड़ा दिये। अन्तमें उन्होंने सम्मोहन नामक अस्त्रको प्रकट किया, जिससे सारे-के-सारे कौरव वीर बेहोश हो गये; उनके हाथोंसे अस्त्र गिर पड़े। उस समय अर्जुन चाहते तो इन सबको आसानीसे मार सकते थे, परंतु वे इन सब बातोंसे ऊपर थे। होशमें आनेपर भीष्मकी सलाहसे कौरवोंने गौओंको

छोड़कर लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा। अर्जुन विजयघोष करते हुए नगरमें चले आये। इस प्रकार अर्जुनने विराटकी गौओंके साथ-साथ उनकी मान-मर्यादाकी भी रक्षा करके अपने आश्रयदाताका ऋण कई गुने रूपमें चुका दिया। धन्य स्वामिभक्ति!

महाभारत-युद्धके तो अर्जुन एक प्रधान पात्र थे ही। पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान सेनानायक यही थे। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हींका सारथि बनना स्वीकार किया था तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि अजेय योद्धाओंसे टक्कर लेना इन्हींका काम था। वे सभी लोग इनका लोहा मानते थे। इन्होंने जयद्रथवधके दिन जो अद्भुत पराक्रम एवं अस्त्रकौशल दिखलाया, वह तो इन्हींके योग्य था। इनकी भयङ्कर प्रतिज्ञाको सुनकर उस दिन कौरवोंने जयद्रथको सारी सेनाके पीछे खड़ा किया था। कई अक्षौहिणी सेनाके बीचमेंसे रास्ता काटते हुए अर्जुन बड़ी मुस्तैदी एवं अदम्य उत्साहके साथ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। शत्रुसेनाके हजारों वीर और हाथी-घोड़े उनके अमोघ बाणोंके शिकार बन चुके थे। वे रथसे एक कोसतकके शत्रुओंका सफाया करते जाते थे। इतनेमें शाम होनेको आ गयी। इनके घोड़े बाणोंके लगनेसे बहुत व्यथित हो गये थे और अधिक परिश्रमके कारण थक भी गये थे। भूख-प्यास उन्हें अलग सता रही थी। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप घोड़ोंको खोलकर इनके बाण निकाल दीजिये। तब-तक मैं कौरवोंकी सारी सेनाको रोके रहूँगा।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे उतर पड़े और बड़ी सावधानीसे धनुष लेकर अविचल भावसे

खड़े हो गये। उस समय इन्हें पराजित करनेका अच्छा मौका देखकर शत्रु-सेनाके वीरोंने एक साथ इन्हें घेर लिया और तरह-तरहके बाणों एवं शस्त्रोंसे ढक दिया, किन्तु वीर अर्जुनने उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे रोककर बदलेमें उन सभीको बाणोंसे अच्छादित कर दिया। इधर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि घोड़े प्याससे व्याकुल हो रहे हैं; किन्तु पासमें कोई जलाशय नहीं है। इसपर अर्जुनने तुरन्त ही अस्त्र-द्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीने योग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। इतना ही नहीं, उस सरोवरके ऊपर उन्होंने एक बाणोंका घर बना दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग दाँतोंतले अँगुली दबाने और वाह-वाह करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनको पीछे न हटा सके। इस बीचमें श्रीकृष्णने फुर्तीसे घोड़ोंके बाण निकालकर उन्हें नहलाया, मालिश की, जल पिलाया और घास खिलाकर तथा जमीनपर लिटाकर उन्हें फिरसे रथमें जोत लिया। अर्जुन जब जयद्रथके पास पहुँचे तो इनपर आठ महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया और दुर्योधनने अपने बहनोईकी रक्षाके उद्देश्यसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परन्तु अर्जुन उन सबका मुकाबला करते हुए आगे बढ़ते ही गये। इनके वेगको कोई रोक नहीं सका। इन्होंने श्रीकृष्णकी कृपासे सूर्यास्त होते-होते जयद्रथको अपने वज्रतुल्य बाणोंका शिकार बना लिया और श्रीकृष्णके कथनानुसार इस कौशलसे उसके मस्तकको काटा कि उसका सिर कुरुक्षेत्रसे बाहर जाकर उसके पिताकी गोदमें

गिरा। इस प्रकार श्रीकृष्णकी सहायतासे सूर्यास्तसे पहले-पहले अर्जुनने जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

अर्जुन जगद्विजयी वीर और अद्वितीय धनुर्धर तो थे ही; वे बड़े भारी सत्यप्रतिज्ञ, सदाचारी, धर्मात्मा एवं इन्द्रियजयी भी थे। पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थमें राज करते थे; उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। ब्राह्मणने आकर पाण्डवोंके सामने पुकार की। अर्जुनने ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी और उन्हें गौओंको छुड़ाकर लानेका वचन दिया। परन्तु उनके शस्त्र उस घरमें थे, जहाँ उनके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे। पाँचों भाइयोंमें पहलेसे ही यह शर्त हो चुकी थी कि जिस समय द्रौपदी एक भाईके साथ एकान्तमें रहे, उस समय दूसरा कोई भाई यदि उनके कमरेमें चला जाय तो वह बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करता हुआ वनमें रहे। अर्जुन बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। यदि ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा नहीं की जाती तो क्षत्रिय-धर्मसे च्युत होते हैं—और उसके लिये शस्त्र लेने कमरेमें जाते हैं तो नियमभङ्ग होता है। अन्तमें अर्जुनने नियमभङ्ग करके भी ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा करनेका ही निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'नियमभङ्गके कारण मुझे कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ; ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करके अपराधियोंको दण्ड देना मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' धन्य धर्मप्रेम!

अर्जुन चुपचाप युधिष्ठिरके कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये और उसी समय लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा

लाये। वहाँसे लौटकर उन्होंने अपने बड़े भाईसे नियमभङ्गके प्रायश्चित्तरूपमें वन जानेकी आज्ञा माँगी। युधिष्ठिरने उन्हें समझाया कि 'बड़ा भाई अपनी स्त्रीके पास बैठा हो, उस समय छोटे भाईका उसके पास चला जाना अपराध नहीं है। यदि कोई अपराध हुआ भी हो तो वह मेरे प्रति हुआ और मैं उसे स्वेच्छासे क्षमा करता हूँ। फिर तुमने धर्मपालनके लिये ही तो नियमभङ्ग किया है, इसलिये भी तुम्हें वन जानेकी आवश्यकता नहीं है।' अर्जुनके लिये नियमभङ्गके प्राश्चित्तसे बचनेका यह अच्छा मौका था। और कोई होता तो इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देता। आजकल तो कानूनके शिकंजेसे बचनेके लिये कानूनका ही आश्रय लेना बिल्कुल जायज समझा जाता है, परन्तु अर्जुन बहाना लेकर दण्डसे बचना नहीं जानते थे। उन्होंने युधिष्ठिरके समझानेपर भी सत्यकी रक्षाके लिये नियमका पालन आवश्यक समझा और बनवासकी दीक्षा लेकर वहाँसे चल पड़े। धन्य सत्यप्रतिज्ञता और नियमपालनकी तत्परता!

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्रविद्या तथा गान्धर्वविद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा। उस दिन सभामें इन्द्रने अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसङ्कोचभावसे अपने

पास आयी देख सहम गये। उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बन्द कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दङ्ग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकार व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने खुल्लमखुल्ला अर्जुनके प्रति कामभाव प्रकट किया। अब तो अर्जुन मारे सङ्कोचके धरतीमें गड़-से गये। उन्होंने अपने हाथोंसे दोनों कान मूँद लिये और बोले—'माता! यह क्या कह रही हो? देवि! निस्सन्देह तुम मेरी गुरुपत्नीके समान हो। देव-सभामें मैंने तुम्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा अवश्य था; परन्तु मेरे मनमें कोई बुरा भाव नहीं था। मैं यही सोच रहा था कि पूरुवंशकी यही माता हैं! इसीसे मैं तुमको देख रहा था। देवि! मेरे सम्बन्धमें और कोई बात तुम्हें नहीं सोचनी चाहिये। तुम मेरे लिये बड़ोंकी बड़ी और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो। जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्र-पत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पूरुवंशकी जननी होनेके नाते मेरी पूजनीया माता हो। मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।'* अब तो उर्वशी क्रोधके मारे आगबबूला हो गयी। उसने अर्जुनको शाप दिया—'मैं इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी थी, परन्तु तुमने मेरे प्रेमको ठुकरा दिया। इसलिये जाओ तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें नचनियाँ

---

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि।
त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया॥
(महा० वन० ४६।४६-४७)

होकर रहना पड़ेगा और लोग तुम्हें हिजड़ा कहकर पुकारेंगे।' अर्जुनने उर्वशीके शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु धर्मका त्याग नहीं किया। एकान्तमें स्वेच्छासे आयी हुई उर्वशी-जैसी अनुपम सुन्दरीका परित्याग करना अर्जुनका ही काम था। धन्य इन्द्रियजय! जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्जुनको बुलाकर उनकी पीठ ठोंकी और कहा— 'बेटा! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर तुम्हारी माता धन्य हुई। तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया। अब तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। उर्वशीने जो शाप तुम्हें दिया है, वह तुम्हारे लिये वरदानका काम करेगा। तेरहवें वर्षमें जब तुम अज्ञातवास करोगे, उस समय यह शाप तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। इसके बाद तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी।' सच है—धर्मो रक्षति रक्षितः।'

विराट-नगरमें अज्ञातवासकी अवधि पूरी हो जानेपर जब पाण्डवोंने अपनेको राजा विराटके सामने प्रकट किया, उस समय राजा विराटने कृतज्ञतावश अपनी कन्या उत्तराकुमारीका अर्जुनसे विवाह करना चाहा। परन्तु अर्जुनने उनके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—राजन्! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने भी पुत्रीके रूपमें देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं उसके सामने नाचता था और संगीतका जानकार भी हूँ। इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है, परन्तु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्क

हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। अतः आपको या किसी औरको हम दोनोंके प्रति अनुचित सन्देह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करनेसे ही हम दोनोंका चरित्र शुद्ध समझा जायगा।' अर्जुनके इस पवित्र भावकी सब लोगोंने प्रशंसा की और उत्तरा अभिमन्युको ब्याह दी गयी। अर्जुन-जैसे महान् इन्द्रियजयी ही इस प्रकार युवती कन्याके साथ एक वर्षतक घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर भी अपनेको अछूता रख सके और उनका भाव भी इसके प्रति बिगड़ा नहीं। वयस्क छात्रों तथा छात्राओंके शिक्षकोंको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

जब अश्वत्थामा रात्रिमें सोये हुए पाण्डवोंके पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न आदिको मारकर स्वयं गङ्गातटपर जा बैठा, तब पीछेसे उसके क्रूर कर्मका संवाद पाकर भीमसेन और अर्जुन उससे बदला लेनेके लिये उसकी तलाशमें गये। भीम और अर्जुनको आते देख अश्वत्थामा बहुत डर गया और उनके हाथोंसे बचनेका कोई उपाय न देख उसने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। देखते-देखते वहाँ प्रलयकालकी-सी अग्नि उत्पन्न हो गयी और वह चारों ओर फैलने लगी। उसे शान्त करनेके लिये अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्र प्रकट किया, क्योंकि ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही शान्त किया जा सकता था। दोनों अस्त्रोंके आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको भय मालूम होने लगा। यह भयङ्कर काण्ड देखकर देवर्षि नारद और महर्षि व्यास दोनों

वहाँ एक साथ पधारे और दोनों वीरोंको शान्त करने लगे। इन दोनों महापुरुषोंके कहनेसे अर्जुनने तो तुरन्त अपना दिव्य अस्त्र लौटा लिया। उन्होंने उसे छोड़ा ही था अश्वत्थामाके अस्त्रको शान्त करनेके लिये ही। उस अस्त्रका ऐसा प्रभाव था कि उसे एक बार छोड़ देनेपर सहसा उसे लौटाना अत्यन्त कठिन था। केवल ब्रह्मचारी ही उसे लौटा सकता था। अश्वत्थामाने भी उन दोनों महापुरुषोंको देखकर उसे लौटानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह संयमी न होनेके कारण उसे लौटा न सका। अन्तमें व्यासजीके कहनेसे उसने उस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ दिया और वह बालक मरा हुआ निकला, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उसे फिरसे जिला दिया। इस प्रकार अर्जुनमें शूरवीरता, अस्त्रज्ञान और इन्द्रियजय—इन तीनों गुणोंका अद्भुत सम्मिश्रण था।

अर्जुनका जीवन एक दिव्य जीवन था। उनके चरित्रपर हम जितना ही विचार करते हैं, उतना ही हमें वह आदर्श एवं शिक्षाओंसे पूर्ण प्रतीत होता है।



(४) कुन्ती देवी

कुन्तीदेवी एक आदर्श महिला थीं। ये महात्मा पाण्डवोंकी माता एवं भगवान् श्रीकृष्णकी बुआ थीं। ये वसुदेवजीकी सगी बहन थीं तथा राजा कुन्तिभोजको गोद दी गयीं थीं। जन्मसे इन्हें लोग पृथाके नामसे पुकारते थे, परन्तु 'राजा कुन्तिभोजके यहाँ इनका लालन-पालन होनेसे ये कुन्तिके नामसे विख्यात हुईं। ये बालकपनसे ही बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशीला एवं भक्तिमती थीं। राजा कुन्तिभोजके यहाँ एक बार एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण अतिथिरूपमें आये। इनकी सेवाका कार्य बालिका कुन्तीको सौंपा गया। इनकी ब्राह्मणोंमें बड़ी भक्ति थी और अतिथि-सेवामें बड़ी रुचि थी। राजपुत्री पृथा आलस्य और अभिमानको त्यागकर ब्राह्मण-देवताकी सेवामें तन-मनसे संलग्न हो गयी। उसने शुद्ध मनसे सेवा करके ब्राह्मण देवताको पूर्णतया प्रसन्न कर लिया। ब्राह्मणदेवताका व्यवहार बड़ा अटपटा था। कभी वह अनियत समयपर आते, कभी आते ही नहीं और कभी ऐसी चीज खानेको माँगते जिसका मिलना अत्यन्त कठिन होता, किन्तु पृथा उनके सारे काम इस प्रकार कर देती, मानो उसने उनके लिये पहलेसे ही तैयारी कर रक्खी हो। उसके शील-स्वभाव एवं संयमसे ब्राह्मणको बड़ा सन्तोष हुआ। कुन्तीकी यह बचपनकी ब्राह्मण-सेवा उसके लिये बड़ी कल्याणप्रद सिद्ध हुई और इसीसे उनके जीवनमें संयम, सदाचार, त्याग एवं सेवाभावकी नींव पड़ी। आगे जाकर इन गुणोंका उनके अन्दर अद्भुत विकास हुआ।

कुन्तीके अन्दर निष्कामभावका विकास भी बचपनसे ही हो गया था। इन्हें बड़ी तत्परता एवं लगनके साथ महात्मा ब्राह्मणकी सेवा करते पूरा एक वर्ष हो गया। इनके सेवा-मन्त्रका अनुष्ठान पूरा हुआ। इनकी सेवामें ढूँढ़नेपर भी ब्राह्मणको कोई त्रुटि नहीं दिखायी दी। तब तो वे इनपर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! मैं तेरी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर माँग ले।' कुन्तीने ब्राह्मणदेवताको बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। श्रीकृष्णकी बुआ और पाण्डवोंकी भावी माताका यह उत्तर सर्वथा अनुरूप था। कुन्तीने कहा—'भगवन्! आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे सब कार्य तो इसीसे सफल हो गये। अब मुझे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।' एक अल्प-वयस्क बालिकाके अन्दर विलक्षण सेवाभावके साथ-साथ ऐसी निष्कामताका संयोग मणि-काञ्चन-संयोगके समान था। हमारे देशकी बालिकाओंको कुन्तीके इस आदर्श निष्काम सेवा-भावसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अतिथि-सेवा हमारे सामाजिक जीवनका प्राण रही है और उसकी शिक्षा भारतवासियोंको बचपनसे ही मिल जाया करती थी। सच्ची एवं सात्त्विक सेवा वही है, जो प्रसन्नतापूर्वक की जाय—जिसमें भार अथवा उकताहट न प्रतीत हो और जिसके बदलेमें कुछ न चाहा जाय। आजकलकी सेवामें प्रायः इन दोनों बातोंका अभाव देखा जाता है। प्रसन्नतापूर्वक निष्कामभावसे की हुई सेवा कल्याणका परम साधन बन जाती है। अस्तु,

जब कुन्तीने ब्राह्मणसे कोई वर नहीं माँगा तो उन्होंने उससे देवताओंके आवाहनका मन्त्र ग्रहण करनेके लिये कहा। वे कुछ-न-

कुछ कुन्तीको देकर जाना चाहते थे। अबकी वार ब्राह्मणके अपमानके भयसे वह इन्कार न कर सकी। तब उन्होंने उसे अथर्व वेदके शिरोभागमें आये हुए मन्त्रोंका उपदेश दिया और कहा कि इन मन्त्रोंके बलसे तू जिस-जिस देवताका आवाहन करेगी, वही तेरे अधीन हो जायगा।' यों कहकर वे ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। ये ब्राह्मण और कोई नहीं, उग्रतपा महर्षि दुर्वासा थे। इनके दिये हुए मन्त्रोंके प्रभावसे वह आगे चलकर धर्म आदि देवताओंसे युधिष्ठिर आदिको पुत्ररूपमें प्राप्त कर सकी।

कुन्तीका विवाह महाराज पाण्डुसे हुआ था। महाराज पाण्डु बड़े ही धर्मात्मा थे। इनके द्वारा एक बार भूलसे मृगरूपधारी किन्दम मुनिकी हिंसा हो गयी। इस घटनासे इनके मनमें बड़ी ग्लानि और निर्वेद हुआ और उन्होंने सब कुछ त्यागकर वनमें रहनेका निश्चय कर लिया। देवी कुन्ती बड़ी पतिभक्ता थीं। ये भी अपने पतिके साथ इन्द्रियोंको वशमें करके तथा कामजन्य सुखको तिलाञ्जलि देकर वनमें रहनेके लिये तैयार हो गयीं। तबसे इन्होंने जीवनपर्यन्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया और संयमपूर्वक रहीं। पतिका स्वर्गवास होनेपर इन्होंने अपने बच्चोंके रक्षाका भार अपनी छोटी सौत माद्रीको सौंपकर अपने पतिका अनुगमन करनेका विचार किया। परन्तु माद्रीने इसका विरोध किया। उसने कहा—'बहिन! मैं अभी युवती हूँ, अतः मैं ही पतिका अनुगमन करूँगी। तुम मेरे बच्चोंकी सँभाल रखना।' कुन्तीने माद्रीकी बात मान ली और अन्ततक उसके पुत्रोंको अपने पुत्रोंसे बढ़कर समझा। सपत्नी

एवं उसके पुत्रोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसकी शिक्षा भी हमारी माता-बहिनोंको कुन्तीके जीवनसे लेनी चाहिये। पतिके जीवनकालमें इन्होंने माद्रीके साथ छोटी बहिनका-सा बर्ताव किया और उसके सती होनेके बाद उसके पुत्रोंके प्रति वही भाव रक्खा जो एक साध्वी स्त्रीको रखना चाहिये। सहदेवके प्रति तो उनकी विशेष ममता थी और वह भी इन्हें बहुत अधिक प्यार करता था।

पतिकी मृत्युके बादसे कुन्ती देवीका जीवन बराबर कष्टमें बीता। परन्तु वे बड़ी ही विचारशीला एवं धैर्यवती थीं। अतः उन्होंने कष्टों-की कुछ भी परवा नहीं की और अन्ततक धर्मपर आरूढ़ रहीं। दुर्योधनके अत्याचारोंको भी ये चुपचाप सहती रहीं। इनका स्वभाव बड़ा ही कोमल और दयालु था। इन्हें अपने कष्टोंकी कोई परवा नहीं थी; परन्तु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकती थीं। लाक्षाभवनसे निकलकर जब ये अपने पुत्रोंके साथ एकचक्रा नगरीमें रहने लगी थीं, उन दिनों वहाँकी प्रजापर एक बड़ा भारी सङ्कट था। उस नगरीके पास ही एक बकासुर नामक राक्षस रहता था। उस राक्षसके लिये नगरवासियोंको प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे पहुँचाने पड़ते थे। जो मनुष्य इन्हें लेकर जाता, उसे भी वह राक्षस खा जाता। वहाँके निवासियोंको बारी-बारीसे यह काम करना पड़ता था। पाण्डवलोग जिस ब्राह्मणके घरमें भिक्षुकोंके रूपमें रहते थे, एक दिन उसके घरसे राक्षसके लिये आदमी भेजनेकी बारी आयी। ब्राह्मण-परिवारमें कुहराम मच गया। कुन्तिको जब इस

बातका पता लगा तो उनका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने सोचा--'हमलोगोंके रहते ब्राह्मण-परिवारको कष्ट भोगना पड़े, यह हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी। फिर हमारे तो ये आश्रय-दाता हैं, इनका प्रत्युपकार हमें किसी-न-किसी रूपमें करना चाहिये। अवसर आनेपर उपकारीका प्रत्युपकार न करना धर्मसे च्युत होना है। जब इनके घरमें हमलोग रह रहे हैं तो इनका दुःख बँटाना हमारा कर्तव्य हो जाता है।' यों विचारकर कुन्ती ब्राह्मणके घर गयीं। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ बैठे हैं। वे अपनी स्त्रीसे कह रहे हैं कि 'तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो। मैं राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता।' पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा—'नहीं, मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी। पत्नीके लिये सबसे बढ़-कर सनातन कर्तव्य यही है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी भलाई करे। स्त्रियोंके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे अपने पतिसे पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ। यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे। पुरुषका वध निर्विवाद है और स्त्रीका सन्देहग्रस्त, इसलिये मुझे ही उसके पास भेजिये।' माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली--'आप क्यों रो रहे हैं? देखिये, धर्मके अनुसार आप दोनों मुझे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे। इसलिये आज ही मुझे छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते? लोग सन्तान इसलिये चाहते हैं कि वह हमें दुःखसे बचावे।' यह सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे,

कन्या भी रोये बिना न रह सकी। सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-बालक कहने लगा—'पिताजी! माताजी! बहिन! मत रोओ।' फिर उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा।' तब सब लोग हँस पड़े। कुन्ती यह सब देख-सुन रही थीं। वे आगे बढ़कर उनसे बोलीं—'महाराज! आपके तो एक पुत्र और एक ही कन्या है। मेरे आपकी दयासे पाँच पुत्र हैं। राक्षसको भोजन पहुँचानेके लिये मैं उनमेंसे किसीको भेज दूँगी, आप घबरायें नहीं। ब्राह्मणदेवता कुन्तीदेवीके इस प्रस्तावको सुनकर नट गये। उन्होंने कहा—'देवि! आपका इस प्रकार कहना आपके अनुरूप ही है; परन्तु मैं तो अपने लिये अपने अतिथिकी हत्या नहीं करा सकता।' कुन्तीने उन्हें बतलाया कि 'मैं अपने जिस पुत्रको राक्षसके पास भेजूँगी, वह बड़ा बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है; उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।' इसपर ब्राह्मण राजी हो गये। तब कुन्तीने भीमसेनको उस कामके लिये राक्षसके पास भेज दिया। भला, दूसरोंकी प्राणरक्षाके लिये इस प्रकार अपने हृदयके टुकड़ेको जान-बूझकर कोई माता बलिदान कर सकती है? कहना न होगा कि कुन्तीके इस आदर्श त्यागके प्रभावसे संसारपर बहुत ही अच्छा असर पड़ा। अतएव सभीको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

कुन्तीदेवीका सत्यप्रेम भी आदर्श था। ये विनोदमें भी कभी झूठ नहीं बोलती थीं। भूलसे भी इनके मुँहसे बात निकल जाती थी, उसका ये जी-जानसे पालन करती थीं। इस प्रकारकी सत्य-निष्ठा इतिहासके पन्ने उलटनेपर भी दूसरी जगह प्रायः नहीं देखनेमें

जाती। अर्जुन और भीम स्वयंवरमें द्रौपदीको जीतकर जब माताके पास लाये और कहा कि 'माता! आज हम यह भिक्षा लाये हैं। तो इन्होंने उन्हें बिना देखे ही कह दिया कि 'बेटा! पाँचों भाई मिलकर इसका उपयोग करो।' जब इन्हें मालूम हुआ कि ये एक कन्या लाये हैं, तब तो ये बड़े असमंजसमें पड़ गयीं। इन्होंने सोचा 'यदि मैं अपनी बात वापस लेती हूँ तो असत्यका दोष लगता है; और यदि अपने पुत्रोंको उसीके अनुसार चलनेके लिये कहती हूँ तो सनातन मर्यादाका लोप होता है।' पाँच भाइयोंका एक स्त्रीसे विवाह हो—यह पहले कभी नहीं देखा-सुना गया था। ऐसी स्थितिमें कुन्तीदेवी कुछ भी निश्चय न कर सकीं, वे किंकर्तव्यविमूढ हो गयीं। अन्तमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्मति पूछी और उन्होंने सत्यपर कायम रहनेकी ही सलाह दी। पीछे राजा द्रुपदकी ओरसे आपत्ति होनेपर वेदव्यासजीने द्रौपदीके पूर्वजन्मोंकी कथा कहते हुए उन्हें समझाया कि शङ्करजीके वरदानसे ये पाँचों ही द्रुपदकुमारीका पाणिग्रहण करेंगे। इस प्रकार पाँचोंके साथ द्रुपदकुमारी विधिपूर्वक ब्याह दी गयी। कुन्तीदेवीकी सत्यनिष्ठाकी विजय हुई। उनके मुखसे हठात् ऐसी ही बात निकली, जो होनेवाली थी। सत्यका दृढ़तापूर्वक आश्रय लेनेपर ऐसा होना किसीके लिये भी असम्भव नहीं है। अस्तु,

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था। पाण्डवोंके वनवास एवं अज्ञातवासके समय उनसे अलग हस्तिनापुरमें ही रहीं और वहींसे इन्होंने अपने

पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका सन्देश भेजा। उन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा कि 'पुत्रो! जिस कार्यके लिये क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस कार्यके करनेका समय आ गया है।* इस समय तुम लोग मेरे दूधको न लजाना।' महाभारतयुद्धके समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध-समाप्तिके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के पदपर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानरहित होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं। यहाँतक कि जब ये दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने लगे, उस समय ये चुपचाप उनके सङ्ग हो लीं और युधिष्ठिर आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुईं। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके बाद सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुख-भोगको ठुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानीसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ देखनेको मिलता है!

---

* एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
(महा० उद्योग० १३७ । ९-१०)

हमारी माताओं एवं बहिनोंको कुन्तीदेवीके इस अनुपम त्यागसे शिक्षा लेना चाहिये ।

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों करवाया! हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें वनसे नगरमें क्यों लायीं?' उस समय कुन्तीदेवीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अङ्कित करने योग्य है। वे बोलीं—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुम लोगोंको युद्धके लिये उसकाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्ततक उनकी सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलेंगी।

(५) देवी द्रौपदी

देवी द्रौपदी पाञ्चालनरेश राजा द्रुपदकी अयोनिजा पुत्री थीं। इनकी उत्पत्ति यज्ञवेदीसे हुई थी। इनका रूप-लावण्य अनुपम था। इनके-जैसी सुन्दरी उस समय पृथ्वीभरमें कोई न थी। इनके शरीरसे तुरन्तके खिले कमलकी-सी गन्ध निकलकर एक कोसतक फैल जाती थी। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने कहा था—'देवताओं-का कार्य सिद्ध करनेके लिये क्षत्रियोंके संहारके उद्देश्यसे इस रमणीरत्नका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवोंको बड़ा भय होगा। कृष्णवर्ण होनेके कारण लोग इन्हें कृष्णा कहते थे। पूर्व जन्ममें दिये हुए भगवान् शङ्करके वरदानसे इन्हें इस जन्ममें पाँच पति प्राप्त हुए। अकेले अर्जुनके द्वारा स्वयंवरमें जीती जानेपर भी माता कुन्तीकी आज्ञासे इन्हें पाचों भाइयोंने व्याहा था।

द्रौपदी उच्च कोटिकी पतिव्रता एवं भगवद्भक्त थीं। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अविचल प्रीति थी। ये उन्हें अपना रक्षक, हितू एवं परम आत्मीय तो मानती ही थीं, उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्तामें भी इनका पूर्ण विश्वास था। जब कौरवोंकी सभामें दुष्ट दुःशासनने इन्हें नङ्गी करना चाहा और सभासदोंमेंसे किसीकी हिम्मत न हुई कि इस अमानुषी अत्याचारको रोके, उस समय अपनी लाज बचानेका कोई दूसरा उपाय न देख इन्होंने अत्यन्त आतुर होकर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन !
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥
(महा० सभा० ६८ । ४१—४४)

सच्चे हृदयकी करुण पुकार भगवान् बहुत जल्दी सुनते हैं। श्रीकृष्ण उस समय द्वारकामें थे। वहाँसे वे तुरन्त दौड़े आये और धर्मरूपसे द्रौपदीके वस्त्रोंमें छिपकर उनकी लाज बचायी। भगवान्‌की कृपासे द्रौपदीकी साड़ी अनन्तगुना बढ़ गयी! दुःशासन उसे जितना ही खींचता था, उतना ही वह बढ़ती जाती थी। देखते-देखते वहाँ वस्त्रका ढेर लग गया। महाबली दुःशासनकी प्रचण्ड भुजाएँ थक गयीं; परंतु साड़ीका छोर हाथ नहीं आया। उपस्थित सारे समाजने भगवद्भक्ति एवं पतिव्रताका अद्भुत चमत्कार देखा। अन्तमें दुःशासन हारकर लज्जित हो बैठ गया। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्तकी लाज रख ली। धन्यभक्तवत्सलता!

एक दिनकी बात है—जब पाण्डव लोग द्रौपदीके साथ काम्यक वनमें रह रहे थे, दुर्योधनके भेजे हुए महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर पाण्डवोंके पास आये। दुर्योधनने जान-बूझकर उन्हें ऐसे समयमें भेजा जब कि सब लोग भोजन करके विश्राम कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिरने अतिथिसेवाके उद्देश्यसे ही भगवान् सूर्यदेवसे एक ऐसा चमत्कारी बर्तन प्राप्त किया था, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता था। लेकिन उसमें शर्त यही थी, जबतक द्रौपदी भोजन नहीं कर चुकती थीं तभीतक

उस बर्तनमें यह करामात रहती थी। युधिष्ठिरने महर्षिको शिष्य-मण्डलीके सहित भोजनके लिये आमन्त्रित किया और दुर्वासाजी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये सबके साथ गङ्गातटपर चले गये।

दुर्वासाजीके साथ दस हजार शिष्योंका एक पूरा-का-पूरा विश्वविद्यालय-सा चला करता था। धर्मराजने उन सबको भोजनका निमन्त्रण तो दे दिया और ऋषिने उसे स्वीकार कर भी लिया; परन्तु किसीने भी इसका विचार नहीं किया कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हैं, इसलिये सूर्यके दिये हुए बर्तनसे तो उन लोगोंके भोजनकी व्यवस्था हो नहीं सकती थी। द्रौपदी बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। उन्होंने सोचा—'ऋषि यदि बिना भोजन किये वापस लौट जाते हैं तो बिना शाप दिये नहीं रहेंगे।' उनका क्रोधी स्वभाव जगद्विख्यात था। द्रौपदीको और कोई उपाय नहीं सूझा। तब उन्होंने मन-ही-मन भक्तभयभञ्जन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और इस आपत्तिसे उबारनेकी उनसे इस प्रकार प्रार्थना की—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्त्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल॥

नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण ।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम् ।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम् ।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा ।
तथैव सङ्कटादस्मान्मुद्धर्तुमिहार्हसि ॥
(महा० वन० २६३ । ८—१६)

श्रीकृष्ण तो घट-घटको जाननेवाले हैं । वे तुरन्त वहाँ आ पहुँचे । उन्हें देखकर द्रौपदीके शरीरमें मानो प्राण आ गये, डूबते हुएको मानो सहारा मिल गया । द्रौपदीने संक्षेपमें उन्हें सारी बात सुना दी । श्रीकृष्णने अधीरता प्रदर्शित करते हुए कहा—'और सब बात पीछे होंगी, पहले मुझे जल्दी कुछ खानेको दे दो । मुझे बड़ी भूख लगी है । तुम जानती नहीं हो मैं कितनी दूरसे हारा-थका आया हूँ ।' द्रौपदी लाजके मारे गड़-सी गयीं । उन्होंने रुकते-रुकते कहा—'प्रभो ! मैं अभी-अभी खाकर उठी हूँ । अब तो उस बटलोईमें कुछ भी नहीं बचा है ।' श्रीकृष्णने कहा—'जरा अपनी बटलोई मुझे दिखाओ तो सही ।' कृष्णा बटलोई ले आयीं । श्रीकृष्णने उसे हाथमें लेकर देखा तो उसके गलेमें उन्हें एक सागका पत्ता चिपका हुआ मिला । उन्होंने उसीको मुँहमें डालकर कहा—'इस सागके पत्तेसे सम्पूर्ण जगत्के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तुरंत तृप्त हो जायँ ।' इसके बाद उन्होंने सहदेवसे कहा—'भैया ! अब तुम मुनीश्वरोंको भोजनके लिये बुला लाओ ।' सहदेवने गङ्गातटपर जाकर

देखा तो उन्हें कोई नहीं मिला। बात यह हुई कि जिस समय श्रीकृष्णने सागका पत्ता मुँहमें डालकर वह सङ्कल्प पढ़ा, उस समय मुनीश्वर लोग जलमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन्हें अकस्मात् ऐसा अनुभव होने लगा मानो उनका पेट गलेतक अन्नसे भर गया हो। वे सब एक-दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे और कहने लगे कि अब हमलोग वहाँ जाकर क्या खायेंगे ? दुर्वासाने चुपचाप भाग जाना ही श्रेयस्कर समझा; क्योंकि वे जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीषके यहाँ उनपर जो कुछ बीती थी, उसके बादसे उन्हें भगवद्भक्तोंसे बड़ा डर लगने लगा था। बस, सब लोग वहाँसे चुपचाप भाग निकले। सहदेवको वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंसे उन सबके भाग जानेका समाचार मिला और उन्होंने लौटकर सारी बात धर्मराजसे कह दी। इस प्रकार द्रौपदीकी श्रीकृष्ण-भक्तिसे पाण्डवोंकी एक भारी बला टल गयी। श्रीकृष्णने आकर उन्हें दुर्वासाके कोपसे बचा लिया और इस प्रकार अपनी शरणागत-वत्सलताका परिचय दिया।

एक बार वनमें भगवान् श्रीकृष्ण देवी सत्यभामाके साथ पाण्डवोंसे मिलने आये। उस समय बातों-ही-बातोंमें सत्यभामाजीने द्रौपदीसे पूछा—'बहिन ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। मैं देखती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलवान् पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं; इसका क्या कारण है ? क्या तुम कोई जन्तर-मन्तर या औषध जानती हो ? अथवा क्या तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्यासे उन्हें वशमें कर रक्खा है ? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ

जिससे भगवान् श्यामसुन्दर मेरे वशमें हो जायँ।' देवी द्रौपदीने कहा—'बहिन! आप श्यामसुन्दरकी पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बात करती हैं? सती-साध्वी स्त्रियाँ जन्तर-मन्तर आदिसे उतनी ही दूर रहती हैं, जितनी साँप-बिच्छूसे। क्या पतिको जन्तर-मन्तर आदिसे वशमें किया जा सकता है? भोली-भाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियाँ ही पतिको वशमें करनेके लिये इस प्रकारके प्रयोग किया करती हैं। ऐसा करके वे अपना तथा अपने पतिका अहित ही करती हैं। ऐसी स्त्रियोंसे सदा दूर रहना चाहिये।'

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि अपने पतियोंको प्रसन्न रखनेके लिये वे किस प्रकारका आचरण करती थीं। उन्होंने कहा—'बहिन! मैं अहङ्कार और काम-क्रोधका परित्याग कर बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी और उनकी स्त्रियोंकी सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने पतियोंका मन रखती हूँ। मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ। असभ्यतासे खड़ी नहीं होती हूँ। खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, बुरी जगहपर नहीं बैठती, दूषित आचरणके पास नहीं फटकती तथा पतियोंके अभिप्रायपूर्ण सङ्केतका अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घर आते हैं, तब-तब मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ। मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ

रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ, सदा सजग रहती हूँ। घरमें अनाजकी रक्षा करती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंके पास नहीं फटकती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ। मैं दरवाजेपर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली अथवा कूड़ा-करकट डालनेकी जगहपर भी अधिक नहीं ठहरती, किन्तु सदा ही सत्य-भाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ। पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर चले जाते हैं तो मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए समय बिताती हूँ मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, मैं भी उससे दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ।

सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्योहारोंपर पकवान बनाना, माननीयोंका आदर करना तथा और भी मेरे लिये जो-जो धर्म विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ, मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिके अधीन रहना ही है, वही उनका इष्टदेव है। मैं अपने पतियोंसे बढ़कर कभी

नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनसे बढ़िया वस्त्रा-भूषण नहीं पहनती और न कभी सासजीसे वाद-विवाद करती हूँ तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ। मैं सदा अपने पतियोंसे पहले उठती हूँ तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ। अपनी सासकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादिमें मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिरके दस हजार दासियाँ थीं। मुझे उनके नाम, रूप, वस्त्र आदि सबका पता रहता था और इस बातका भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और उतने ही हाथी चलते थे। उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी तथा मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी। अन्तःपुरके ग्वालों और गड़ेरियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख भी मैं ही किया करती थी।

महाराजकी जो कुछ आय-व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे उपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे और मैं सब प्रकारका सुख छोड़कर उनकी सँभाल करती थी। मेरे पतियोंका जो अटूट खजाना था, उसका पता भी मुझ एकको ही था। मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती। उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे। मैं सदा ही सबसे पहले उठती और सबसे पीछे

सोती थी। सत्यभामाजी ! पतियोंको अनुकूल करनेका मुझे तो यही उपाय मालूम है। एक आदर्श गृहपत्नीको घरमें किस प्रकार रहना चाहिये—इसकी शिक्षा हमें द्रौपदीके जीवनसे लेनी चाहिये।

देवी द्रौपदीमें क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा—दोनोंका अभूतपूर्व सम्मिश्रण था। ये बड़ी बुद्धिमती और विदुषी भी थीं। इनका त्याग भी अद्भुत था। इनके पतिव्रतका तो सभी लोग लोहा मानते थे। इन्हें जब दुष्ट दुःशासन बाल खींचते हुए सभामें घसीटकर लाया, उस समय इन्होंने उसे डाँटते हुए अपने पतियोंके कोपका भय दिखलाया और सारे सभासदोंको धिक्कारते हुए द्रोण, भीष्म और विदुर-जैसे सम्मान्य गुरुजनोंको भी उनके चुप बैठे रहनेपर फटकारा। इन्होंने साहसपूर्वक सभासदोंको ललकारकर उनसे न्यायकी अपील की और उन्हें धर्मकी दुहाई देकर यह पूछा कि जब महाराज युधिष्ठिरने अपनेको हारकर पीछे मुझे दाँवपर लगाया है, ऐसी हालतमें उनका दाँवपर लगानेका अधिकार था या नहीं? सब-के-सब सभासद चुप रहे। किसीसे द्रौपदीके इस प्रश्नका उत्तर देते नहीं बना। अन्तमें दुर्योधनके भाई विकर्णने उठकर सबसे द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देने और मौन भङ्ग करनेके लिये अनुरोध किया तथा अपनी ओरसे यह सम्मति प्रकट की कि 'प्रथम तो द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी स्त्री है, अतः अकेले युधिष्ठिरको उन्हें दाँवपर रखनेका कोई अधिकार नहीं था। दूसरे उन्होंने अपनेको हारनेके बाद द्रौपदीको दाँवपर लगाया था, इसलिये यह भी उनकी अनधिकार चेष्टा ही समझी जायगी।' विकर्णकी बात सुनकर विदुरने उसका समर्थन किया और अन्य सभासदोंने भी उनकी प्रशंसा की।

परंतु कर्णने डाँटते हुए उसे बलपूर्वक बैठा दिया। इस प्रकार भरी सभामें दुःशासनद्वारा घसीटी जाने एवं अपमानित होनेपर भी द्रौपदीकी नैतिक विजय हुई थी। उनकी बुद्धि सर्वोपरि रही। कोई भी उनकी बातका खण्डन नहीं कर सका। अन्तमें विदुरके समझानेपर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको डाँटा और द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिये उनसे वर माँगनेको कहा। इन्होंने वरदानके रूपमें धृतराष्ट्रसे केवल यही माँगा कि 'मेरे पाचों पति दासत्वसे मुक्त कर दिये जायँ।' धृतराष्ट्रने कहा—'बेटी! और भी कुछ माँग ले।' उस समय द्रौपदीने जो उत्तर दिया, वह सर्वथा द्रौपदीके अनुरूप ही था। उससे उनकी निर्लोभता एवं धर्मप्रेम स्पष्ट झलकता था। इन्होंने कहा—'महाराज! अधिक लोभ करना ठीक नहीं। और कुछ माँगनेकी मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। मेरे पति स्वयं समर्थ हैं। अब जब वे दासतासे मुक्त हो गये हैं, तो बाकी सब कुछ वे स्वयं कर लेंगे।' इस प्रकार द्रौपदीने अपनी बुद्धिमत्ता एवं पतिव्रतके बलसे अपने पतियोंको दासतासे मुक्त करा दिया।

द्रौपदीके जिन लम्बे-लम्बे, काले बालोंका कुछ ही दिन पहले राजसूय-यज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय मन्त्रपूत जलसे अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालोंका दुष्ट दुःशासनके द्वारा भरी सभामें खींचा जाना द्रौपदीको कभी नहीं भूला। उस अभूतपूर्व अपमानकी आग उनके हृदयमें सदा ही जला करती थी, इसलिये जब-जब उनके सामने कौरवोंसे सन्धि करनेकी बात आयी, तब-तब उन्होंने उसका विरोध ही किया और बराबर अपने अपमानको याद दिलाकर अपने पतियोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करती रहीं। अन्तमें जब

यही तय हुआ कि एक बार कौरवोंको समझा-बुझाकर देख लिया जाय और जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय भी इन्हें अपने अपमानकी बात नहीं भूली और इन्होंने अपने लम्बे-लम्बे बालोंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! तुम सन्धि करने जा रहे हो, सो तो ठीक है। परंतु तुम मेरे केशोंको न भूल जाना।' उन्होंने यहाँतक कह दिया कि यदि पाण्डवोंकी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है तो कोई बात नहीं; अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवोंसे संग्राम करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँचों बली पुत्र उनके साथ जूझेंगे।

काम्यक वनमें जब दुष्ट जयद्रथ द्रौपदीको बलपूर्वक ले जानेकी चेष्टा करने लगा, उस समय इन्होंने उसे इतने जोरसे धक्का दिया कि वह कटे हुए पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा। किन्तु वह तुरंत ही सँभलकर खड़ा हो गया और इन्हें जबर्दस्ती रथपर बैठाकर ले चला। पीछे जब भीम और अर्जुन उसे पकड़ लाये और उसकी काफी मरम्मत बना चुके, तब इन्होंने दयापूर्वक उसे छुड़ा दिया। इस प्रकार द्रौपदी क्रोधके साथ-साथ क्षमा करना भी जानती थीं। इनका पतिव्रत-तेज तो अपूर्व था ही। जिस किसीने इनके साथ छेड़-छाड़ अथवा दुश्चेष्टा की, उसीको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सबकी यही दशा हुई। भला पतिव्रता पीड़िता नारीकी हाय किसको नहीं खा लेगी। महाभारत-युद्धमें जो कौरवोंका सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदीका अपमान ही था।

(६) पतिभक्ता गान्धारी

संसारकी पतिव्रता देवियोंमें गान्धारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ये गान्धारराज सुबलकी पुत्री और शकुनिकी बहिन थीं। इन्होंने कुमारी-अवस्थामें ही भगवान् शङ्करकी बड़ी आराधना की और उनसे सौ पुत्रोंका वरदान प्राप्त किया। इन्हें मालूम हुआ कि इनका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्रसे होनेवाला है, उसी समयसे इन्होंने अपनी दोनों आँखोंपर पट्टी बाँध ली। इन्होंने सोचा कि जब मेरे पति ही नेत्रसुखसे वञ्चित हैं तब मुझे संसारको देखनेका क्या अधिकार है। उस समयसे जबतक ये जीवित रहीं अपने उस दृढ़ निश्चयपर अटल रहीं। पतिके लिये इन्द्रियसुखके त्यागका ऐसा अनूठा उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। इनका यह तप और त्याग अनुपम था, संसारके लिये एक अनोखी वस्तु थी। ये सदा अपने पतिके अनुकूल रहीं। इन्होंने ससुरालमें आते ही अपने चरित्र और सद्गुणोंसे पति एवं उनके सारे परिवारको मुग्ध कर लिया। धन्य पतिप्रेम !

देवी गान्धारी जैसी पतिव्रता थीं वैसी निर्भीक और न्यायप्रिय भी थीं। ये सदा सत्य, नीति और धर्मका ही पक्षपात करती थीं, अन्यायका कभी समर्थन नहीं करती थीं। इनके पुत्रोंने देवी द्रौपदी-के साथ भरी सभामें जो अत्याचार किया था, उसका इनके मनमें बड़ा दुःख था। वे इस बातसे अपने पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं हुईं। जब इनके पति राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंकी बातोंमें आकर दुबारा

पाण्डवोंको द्यूतके लिये बुला भेजा, उस समय ये बड़ी दुःखी हुईं। उन्होंने जुएका विरोध करते हुए अपने पतिदेवसे कहा—"स्वामी ! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़के समान रोने-चिल्लाने लगा था, इसलिये उसी समय परमज्ञानी विदुरने कहा था कि इस पुत्रका परित्याग कर दो। मुझे तो यह बात याद करके यही मालूम होता है कि यह कुरुवंशका नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र ! आप अपने दोषसे सबको विपत्तिमें न डालिये। इन ढीठ मूर्खोंकी 'हाँ-में-हाँ' न मिलाइये। इस वंशके नाशके कारण मत बनिये। बँधे हुए पुलको मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त हैं और वैर-विरोधसे विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं है। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुषके चित्तपर शास्त्रके उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु आप वृद्ध होकर बालकोंकी-सी बात करें—यह अनुचित है। इस समय आप अपने पुत्र-तुल्य पाण्डवोंको अपनाये रक्खें। कहीं वे दुःखी होकर आपसे विलग न हो जायँ। कुलकलङ्क दुर्योधनको त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने मोहवश उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी; उसीका यह फल है। शान्ति, धर्म और मंत्रियोंकी सम्मतिसे अपनी विचारशक्तिको सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपके लिये बड़ा दुःखदायी सिद्ध होगा, राजलक्ष्मी क्रूरके हाथमें पड़कर उसीका सत्यानाश कर देती है।' गान्धारीके इन वाक्योंसे धर्म, नीति और निष्पक्षता टपकी पड़ती है। ये दुर्योधनको भी उसकी अनुचित कारवाइयोंपर

बराबर ठोकती रहती थीं और उसकी उद्दण्डताके लिये उसे फटकारती थीं और उसकी अनीतिके भावी दुष्परिणामका भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थीं। पर दुर्योधनके सिरपर काल नाच रहा था, वह इन सबकी हितभरी बातोंपर ध्यान नहीं देने देता था।

पाण्डवोंकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये और वे भी दुर्योधनको समझाकर हार गये तब धृतराष्ट्रने देवी गान्धारीको बुलाकर उनसे कहा कि 'अब तुम्हीं अपने पुत्रको समझाओ। वह हमलोगोंमेंसे तो किसीकी बात नहीं सुनता।' पतिकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'राजन्! आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें सबसे अधिक दोषी तो आप ही हैं! आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कारसे भी उसे इस मार्गसे नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्रको बिना कुछ सोचे-समझे राज्यकी बागडोर सौंप दी; उसीका आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घरमें जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा किये चले जा रहे हैं। ऐसा करके आप पाण्डवोंकी दृष्टिमें अपने-आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। देखिये, यदि साम या भेदसे ही विपत्ति टाली जा सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंके प्रति दण्डका प्रयोग क्यों करेगा?' गान्धारी-की यह युक्ति कैसी निर्भीक, निष्पक्ष, हितभरी, नीतिपूर्ण और सच्ची थी।

उसके बाद गान्धारीने अपने पुत्रको भी बुलाकर उसे समझाना शुरू किया। वे बोलीं—'बेटा! मेरी बात सुनो। तुमसे तुम्हारे पिता, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुरजीने जो बात कही है उसे स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लोगे तो सच मानो, इससे पितामह भीष्मकी, तुम्हारे पिताजीकी, मेरी और द्रोणाचार्य आदि हितैषियोंकी तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। बेटा! राज्यको पाना, बचाना और भोगना अपने हाथकी बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्यको अर्थसे च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीतकर ही राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। देखो— जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्गमें ही मूर्ख सारथीको मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो वे मनुष्यका नाश करनेके लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ जिसके वशमें हैं और जो सब काम सोच-समझकर करता है, उसके पास चिरकाल-तक लक्ष्मी बनी रहती है। तात! तुम्हारे दादा भीष्मजीने और गुरु द्रोणाचार्यजीने जो बात कही है वह बिल्कुल ठीक है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षोंका हित होगा। वत्स! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है तो सुख कहाँसे होगा? यदि तुम अपने मन्त्रियोंके सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो न्यायोचित भाग है वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो तेरह वर्षतक घरसे बाहर रक्खा

गया, वह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब सन्धि करके इसका मार्जन कर दो। तात! संसारमें लोभ करनेसे किसीको सम्पत्ति नहीं मिलती। अतः तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवोंसे सन्धि कर लो।' कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था। इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं तथा वे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा भी जानती थीं।

दुष्ट दुर्योधनपर गान्धारीके इस उत्तम उपदेशका कोई असर नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं और अठारह दिनोंतक कुरुक्षेत्रके मैदानमें भीषण मार-काट हुई। युद्धके दिनोंमें दुर्योधन प्रतिदिन इनसे प्रार्थना करता कि माँ! मैं शत्रुओंके साथ लोहा लेने जा रहा हूँ; आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे युद्धमें मेरा कल्याण हो।' गान्धारीमें पतिव्रतका बड़ा तेज था! वे यदि पुत्रको विजयका आशीर्वाद दे देती तो वह अन्यथा न होता। परन्तु वे देती कैसे? वे जानती थीं कि दुर्योधन अत्याचारी है। अत्याचारीके हाथोंमें कभी राज्यलक्ष्मी टिक नहीं सकती; इसलिये वे हर बार यही उत्तर देतीं—'बेटा जहाँ धर्म है वहीं विजय है। विजय चाहते हो तो धर्मका आश्रय लो, अधर्मका परित्याग करो। उन्होंने दुर्योधनका कभी पक्ष नहीं लिया। परन्तु जब उन्होंने सुना कि मेरे सौ-के-सौ पुत्र मारे गये तो शोकके वेगसे उनका क्रोध उमड़ पड़ा और वे पाण्डवोंको शाप देनेका विचार करने लगीं। भगवान् वेदव्यास तो मनकी बात जान लेते थे। उन्हें जब इस बातका पता लगा तो उन्होंने गान्धारीके पास आकर उन्हें सान्त्वना दी

और उनको असत्-सङ्कल्पसे रोका। उस समय पाण्डव भी वहीं मौजूद थे। माता गान्धारीके मनमें क्षोभ देखकर युधिष्ठिर उनके पास गये और अपनेको धिक्कारते हुए ज्यों ही उनके चरणोंपर गिरने लगे कि गान्धारीकी क्रोधभरी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर महाराज युधिष्ठिरके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर लाल-लाल नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखकर उनके भाई भी मारे भयके इधर-उधर छिपने लगे। उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने माताके समान पाण्डवोंको धीरज दिया। उपर्युक्त घटनासे गान्धारीके अनुपम पातिव्रत तेजका पता लगता है। अन्तमें गान्धारीने अपना क्रोध श्रीकृष्णपर निकाला। अथवा यों कहना चाहिये कि अन्तर्यामी श्रीकृष्णने ही उनकी मति पलटकर पाण्डवोंको उनके कोपसे बचा लिया और उनका अभिशाप अपने ऊपर ले लिया। देवी गान्धारीने कुरुक्षेत्रमें जाकर जब वहाँका हृदयविदारक दृश्य देखा तो वे अपने शोकको सँभाल न सकीं। वे क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णसे बोलीं—कृष्ण! पाण्डव और कौरव अपनी फूटके कारण नष्ट ही हुए हैं; किन्तु तुमने समर्थ होते हुए भी अपने सम्बन्धियोंकी उपेक्षा क्यों कर दी? तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना भी थी। तुम दोनोंको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे; परन्तु तुमने जान-बूझकर कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी। इसलिये अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पतिकी सेवा करके जो तप सञ्चय किया है उसीके बलपर मैं तुम्हें शाप

देती हूँ कि जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हुए कौरव और पाण्डवोंकी तुमने उपेक्षा कर दी, उसी प्रकार तुम अपने बन्धु-बान्धवोंका भी वध करोगे और स्वयं भी अनाथकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ आर्तनाद कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धुबान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोयेंगी।

गान्धारीके ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्ण मुस्कराये और—'मैं तो जानता था कि यह बात इसी तरह होनेवाली है। शाप देकर तुमने होनीको ही बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि वृष्णिवंशका नाश दैवी कोपसे ही होगा। इसका नाश भी मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। मनुष्य क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिये ये यदुवंशी आपसके कलहसे ही नष्ट होंगे।'

युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके बाद देवी गान्धारी कुछ समय-तक उन्हींके पास रहकर अन्तमें अपने पतिके साथ वनमें चली गयीं और वहाँ तपस्वियोंका-सा जीवन बिताकर तपस्वियोंकी भाँति ही उन्होंने अपने पतिके साथ दावाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और पतिके साथ ही कुबेरके लोकमें चली गयीं। इस प्रकार पतिपरायणा गन्धारीने इस लोकमें पतिकी सेवा कर परलोकमें भी पतिका सान्निध्य एवं सेवा प्राप्त की—जो प्रत्येक पतिव्रताका अभीष्ट लक्ष्य होता है। प्रत्येक पतिव्रता नारीको गान्धारीके चरित्रका मनन कर उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

(७) महात्मा विदुर

महात्मा विदुर साक्षात् धर्मके अवतार थे । माण्डव्य ऋषिके शापसे इन्हें शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ा । ये महाराज विचित्रवीर्यकी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार ये धृतराष्ट्र और पाण्डुके एक प्रकारसे सगे भाई ही थे । वे बड़े ही बुद्धिमान्-नीतज्ञ, धर्मज्ञ, विद्वान्, सदाचारी एवं भगवद्भक्त थे । इन्हीं गुणोंके कारण सब लोग इनका बड़ा सम्मान करते थे । ये बड़े निर्भीक एवं साम्यवादी थे तथा धृतराष्ट्र आदिको बड़ी नेक सलाह दिया करते थे । ये धृतराष्ट्रके मन्त्री ही थे । दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा था और उसके जन्मके समय अनेकों अमङ्गल-सूचक उत्पात भी हुए । यह सब देखकर इन्होंने ब्राह्मणोंके साथ राजा धृतराष्ट्रने कहा कि आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा, इसलिये इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है । इसके जीवित रहनेपर आपको दुःख उठाना पड़ेगा । शास्त्रोंकी आज्ञा है कि कुलके लिये एक मनुष्यका, ग्रामके लिये कुलका, देशके लिये एक ग्रामका और आत्माके लिये सारी पृथ्वीका परित्याग कर देना चाहिये ।’ परन्तु धृतराष्ट्रने मोहवश विदुरकी बात नहीं मानी । फलतः उन्हें दुर्योधनके कारण जीवनभर दुःख उठाना पड़ा और अपने जीते-जी कुलका नाश देखना पड़ा । महात्माओंकी हितभरी वाणीपर ध्यान न देनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है ।

जब दुर्योधन पाण्डवोंपर अत्याचार करने लगा तो इनकी सहानुभूति स्वाभाविक पाण्डवोंके प्रति हो गयी; क्योंकि एक तो

वे पितृहीन थे और दूसरे धर्मात्मा थे। ये प्रत्यक्षरूपमें तथा गुप्तरूपसे भी बराबर उनकी रक्षा एवं सहायता करते रहते थे। धर्मात्माओंके प्रति धर्मकी सहानुभूति होनी ही चाहिये और विदुर साक्षात् धर्मके अवतार थे। ये जानते थे कि पाण्डवोंपर चाहे कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न आवें, अन्तमें विजय उनकी ही होगी—'यतो धर्मस्ततो जयः।' इन्हें यह भी मालूम था कि पाण्डव सब दीर्घायु हैं, अतः उन्हें कोई मार नहीं सकता। इसलिये जब दुर्योधनने खेल-ही-खेलमें भीमसेनको विष खिलाकर गङ्गाजीमें बहा दिया और उनके घर न लौटनेपर माता कुन्तीको चिन्ताके साथ-साथ दुर्योधनकी ओरसे अनिष्टकी भी आशङ्का हुई तो इन्होंने जाकर उन्हें समझाया कि 'इस समय चुप साध लेना ही अच्छा है। दुर्योधनके प्रति आशङ्का प्रकट करना खतरेसे खाली नहीं है। इससे वह और चिढ़ जायगा, जिससे तुम्हारे दूसरे पुत्रोंपर भी आपत्ति आ सकती है। भीमसेन मर नहीं सकता, वह शीघ्र ही लौट आयेगा।' कुन्तीने विदुरजीकी नीतिपूर्ण सलाह मान ली। उनकी बात बिल्कुल यथार्थ निकली। भीमसेन कुछ ही दिनों बाद जीते-जागते लौट आये।

लाक्षाभवनसे वेदाग बचकर निकल भागनेकी युक्ति भी पाण्डवोंको विदुरने ही बतायी थी। ये नीतिज्ञ होनेके साथ-साथ कई भाषाओंके जानकार थे। जिस समय पाण्डवलोग वारणावत जा रहे थे, उसी सयय इन्होंने म्लेच्छ-भाषामें युधिष्ठिरको उनपर आनेवाली विपत्तिकी सूचना दे दी और साथ ही उनसे बचनेका उपाय भी समझा दिया। इतना ही नहीं, इन्होंने पहलेसे ही एक

सुरङ्ग खोदनेवालेको लाक्षाभवनमेंसे निकल भागनेके लिये सुरङ्ग खोदनेको कह दिया था। उसने गुप्तरूपसे जमीनके भीतर-ही-भीतर जङ्गल जानेका एक रास्ता बना दिया। लाक्षाभवनमें आग लगाकर पाण्डवलोग माता कुन्तीके साथ उसी रास्तेसे निरापद बाहर निकल आये। गङ्गातटपर इनके पार होनेके लिये विदुरजीने नाविकके साथ एक नौका भी पहलेसे ही तैयार रख छोड़ी थी। उसीसे वे लोग गङ्गापार हो गये। इस प्रकार विदुरजीने बुद्धिमानी एवं नीतिमत्तासे पाण्डवोंके प्राण बचा लिये और दुर्योधन आदिको पता भी न लगने दिया। उन लोगोंने यही समझा कि पाण्डव अपनी माताके साथ लाक्षाभवनमें जलकर मर गये। सर्वत्र केवल शारीरिक बल अथवा अस्त्रबल-ही काम नहीं देता। आत्मरक्षाके लिये नीतिबलकी भी आवश्यकता होती है। महात्मा विदुर धर्म एवं शास्त्रज्ञानके साथ-साथ नीतिके भी खजाने थे।

विदुरजी जिस प्रकार पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति और प्रेम रखते थे, उसी प्रकार अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके प्रति भी स्नेह और आत्मीयता रखते थे। उनके हितका ये सदा ध्यान रखते थे और उन्हें बराबर अच्छी सलाह दिया करते थे। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'—इस सिद्धान्तके अनुसार अवश्य ही इनकी बातें सत्य एवं हितपूर्ण होनेपर भी दुर्योधनादिको कड़वी लगती थी। इसलिये दुर्योधन एवं उनके साथी सदा ही उनसे असन्तुष्ट रहते थे। परन्तु ये उनकी अप्रसन्नताकी कुछ भी परवा न कर सदा ही उनकी मङ्गलकामना किया करते थे और

उसे कुमार्गसे हटानेकी अनवरत चेष्टा करते रहते थे। धृतराष्ट्र भी अपने दुरात्मा पुत्रके प्रभावमें होनेके कारण यद्यपि हर समय उनकी बातपर अमल नहीं कर पाते थे और इसीलिये कष्ट भी पाते थे, फिर भी उनका इनपर बहुत अधिक विश्वास था। वे इन्हें बुद्धिमान्, दूरदर्शी एवं अपना परम हितचिन्तक मानते थे और बहुधा इनसे सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करते थे। पाण्डवोंके साथ व्यवहार करते समय तो वे खास तौरपर इनकी सलाह लिया करते थे। वे जानते थे कि पाण्डवोंके सम्बन्धमें इनकी सलाह पक्षपात-शून्य होगी। अस्तु,

जब मामा शकुनिकी सलाहसे दुष्टबुद्धि दुर्योधन पाण्डवोंके साथ जुआ खेलनेका प्रस्ताव लेकर अपने पिताके पास पहुँचा तो उन्होंने नियमानुसार विदुरजीको सलाहके लिये बुलाया। उनकी बात न माननेपर दुर्योधनने उन्हें प्राण त्याग देनेका भय दिखलाया, परन्तु उन्होंने उससे स्पष्ट कह दिया कि 'विदुरजीसे सलाह किये बिना मैं तुम्हें जुआ खेलनेकी आज्ञा कदापि नहीं दे सकता।' दुर्योधनका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर विदुरजीने समझ लिया कि अब कलियुग आनेवाला है। उन्होंने इस प्रस्तावका घोर विरोध किया और अपने बड़े भाईको समझाया, कि 'जुआ खेलनेसे आपके पुत्रों और भतीजोंमें वैर-विरोध ही बढ़ेगा, उनमेंसे किसीका भी हित नहीं होगा। इसलिये द्यूतका आयोजन न करना ही अच्छा है। इसीमें दोनों ओरका मङ्गल है।' धृतराष्ट्रने विदुरजी एवं उनके मतकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको बहुत समझाया, परन्तु उसने

इनकी एक न मानी। वह तो जुएसे हराकर पाण्डवोंको नीचा दिखानेपर तुला हुआ था। उससे पाण्डवोंका अतुल वैभव देखा नहीं जाता था। दुर्योधनको किसी तरह न मानते देखकर अन्तमें धृतराष्ट्रने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और विदुरजीके द्वारा ही पाण्डवोंको इन्द्रप्रस्थसे बुला भेजा। यद्यपि विदुरजीको यह बात अच्छी नहीं लगी, फिर भी बड़े भाईकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना उन्होंने ठीक नहीं समझा।

पाण्डवोंके पास जाकर विदुरजीने उन्हें सारी बातें कह सुनायीं। महाराज युधिष्ठिरने भी जूएको अच्छा न समझते हुए भी अपने पिताकी आज्ञा मानकर दुर्योधनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया जूएके समय भी इन्होंने जूएकी बुराइयाँ बताते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आप अब भी सँभल जाइये' दुर्योधनकी 'हाँ में हाँ' मिलाना छोड़ दीजिये और कुलको सर्वनाशसे बचाइये। पाण्डवोंसे विरोध करके उन्हें अपना शत्रु न बनाइये।' पाण्डवोंके वनमें चले जानेपर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ी चिन्ता और जलन हुई। उन्होंने विदुरजीको बुलाकर अपने मनकी व्यथा सुनायी और उनसे यह जानना चाहा कि अब हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिससे प्रजा हमपर सन्तुष्ट रहे और पाण्डव भी क्रोधित होकर हमारी कोई हानि न कर सकें।' इसपर विदुरजीने उन्हें समझाया कि 'राजन्! अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों फलोंकी प्राप्ति धर्मसे होती है। राज्यकी जड़ है धर्म; अतः आप धर्ममें स्थित होकर पाण्डवोंकी और अपने पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आपके पुत्रोंने

शकुनिकी सलाहसे भरी सभामें धर्मका तिरस्कार किया है; क्योंकि सत्यसन्ध युधिष्ठिरको कपटद्यूतमें हराकर उन्होंने सर्वस्व छीन लिया है, यह बड़ा अधर्म हुआ है। इसके निराकरणका मेरी दृष्टिमें एक ही उपाय है, वैसा करनेसे आपका पुत्र पाप और कलङ्कसे छूटकर प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। वह उपाय यह है कि आपने पाण्डवोंका जो कुछ छीन लिया, है, वह सब उन्हें लौटा दिया जाय। राजाका यह परम धर्म है कि वह अपने ही हकमें सन्तुष्ट रहे, दूसरेका हक न चाहे। जो उपाय मैंने बतलाया है उससे आपका लाञ्छन छूट जायगा, भाई-भाईमें फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी न होगा। यदि आपके पुत्रोंका तनिक भी सौभाग्य शेष रह गया हो तो शीघ्र-से-शीघ्र यह काम कर डालना चाहिये। यदि आप मोहवश ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंशका नाश हो जायगा यदि आपका पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ले; तब तो ठीक है; अन्यथा परिवार और प्रजाके सुखके लिये उस कुलकलङ्क और दुरात्माको कैद करके युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बैठा दीजिये। युधिष्ठिरके चित्तमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है, इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करें। दुःशासन भरी सभामें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा-याचना करे। और तो क्या कहूँ, बस इतना करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे।'

विदुरजीकी यह मन्त्रणा कितनी सच्ची, हितपूर्ण, धर्मयुक्त और निर्भीक थी। परन्तु जिस प्रकार मरणासन्नको औषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार धृतराष्ट्रको विदुरजीकी यह सलाह पसन्द

नहीं आयीं। वे विदुरजीपर खीझ गये और बोले—'विदुर! अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है; तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ। मैं देखता हूँ कि तुम बार-बार पाण्डवोंका ही पक्ष लेते हो। भला, मैं उनके लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ दूँ!' विदुरजीने देखा अब कौरव-कुलका नाश अवश्यम्भावी है; इसलिये वे चुपचाप उठकर वहाँसे चल दिये और तुरन्त रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास काम्यकवनमें चले गये। वहाँ पहुँचकर इन्होंने पाण्डवोंको हस्तिनापुरसे चले आनेका कारण बतलाया और उन्हें प्रसङ्गवश बड़े कामकी बात कहीं। इधर अब धृतराष्ट्रको विदुरजीके पाण्डवोंके पास चले जानेकी बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि विदुरकी सहायता और सलाह पाकर तो पाण्डव और भी बलवान् हो जायँगे। तब तो उन्होंने तुरन्त सञ्जयको भेजकर विदुरजीको बुलवा भेजा। विदुरजी तो सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। उनके मनमें धृतराष्ट्रके प्रति तनिक भी रोष नहीं था। बड़े भाईकी आज्ञा पाकर जिस प्रकार वे हस्तिनापुरसे चले आये थे, उसी प्रकार इस बार लौट जानेकी आज्ञा पाकर वे वापस उनके पास चले गये। वहाँ जाकर इन्होंने धृतराष्ट्रसे कहा कि मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं; फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें स्वाभाविक ही उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे चित्तमें आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं है।' बात सचमुच ऐसी ही थी। धृतराष्ट्रने भी इनसे अपने अनुचित व्यवहारके लिये क्षमा माँगी। विदुरजी पूर्ववत् धृतराष्ट्रके पास रहकर उनकी सेवा करने लगे।

एक समय धृतराष्ट्रको रातमें नींद नहीं आयी, तब उन्होंने रातमें ही विदुरजीको बुलाकर उनसे शान्तिका उपाय पूछा। उस समय विदुरजीने धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिका जो सुन्दर उपदेश दिया, वह विदुरनीतिके नामसे उद्योगपर्वके ३३ से ४० तक आठ अध्यायोंमें संग्रहीत है। वह स्वतन्त्ररूपसे अध्ययन और मनन करनेकी चीज है। संक्षिप्त महाभारतके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ४८६ से ५०९ तक उसका अविकल अनुवाद छापा गया है।

विदुरजीके भाषणको सुनकर धृतराष्ट्रकी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने उनके मुखसे और भी कुछ सुनना चाहा। उन्होंने कहा—'राजन्! मुझे जो कुछ सुनाना था, वह मैं आपको सुना चुका! अब ब्रह्माजीके पुत्र सनत्सुजात नामक जो सनातन ऋषि हैं, वे ही आपको तत्त्वविषयक उपदेश करेंगे। तत्त्वोपदेश करनेका मुझे अधिकार नहीं है; क्योंकि मेरा जन्म शूद्राके गर्भसे हुआ है। यह कहकर उन्होंने उसी समय महर्षि सनत्सुजातका स्मरण किया और वे तुरन्त वहाँ उपस्थित हो गये। सनत्सुजातजीने राजा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए परमात्माके स्वरूप तथा उनके साक्षात्कारके विषयमें बड़ा सुन्दर विवेचन किया। इस प्रकार विदुरजीने स्वयं तो धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिकी बात सुनायी ही, सनत्सुजात-जैसे सिद्ध योगी एवं परमर्षिद्वारा उन्हें तत्त्वका उपदेश कराकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया। विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके लिये जो कुछ भी चेष्टा होती थी, वह उनके कल्याणके लिये होती थी! महात्माओंका जीवन ही दूसरोंके

कल्याणके लिये ही होता है। यद्यपि विदुरजी तत्त्वज्ञानी थे, फिर भी शूद्र होनेके नाते उन्होंने स्वयं उपदेश न देकर सनातन मर्यादा-की रक्षा की और इस प्रकार जगत्को अपने आचरणके द्वारा यह उपदेश दिया कि ज्ञानीके लिये भी शास्त्रमर्यादाकी रक्षा आवश्यक है। सनत्सुजातजीका यह उपदेश 'सनत्सुजातीय' के नामसे उद्योगपर्वके ही ४१ से ४६ तक छः अध्यायोंमें संग्रहीत है। इसका भाषान्तर भी संक्षिप्त महाभारतके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ५०९ से ५१० तक अविकलरूपसे छापा गया है। पाठकोंको वहीं उसे पूरा देखना चाहिये।

विदुरजी ज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी होनेके साथ-साथ अनन्य भगवद्भक्त भी थे। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें निश्छल प्रीति थी। भगवान् श्रीकृष्ण भी इन्हें बहुत मानते थे। वे जब पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये उस समय वे राजा धृतराष्ट्र एवं उनके सभासदोंसे मिलकर सीधे विदुरजीके यहाँ पहुँचे और उनका आतिथ्य सत्कार किया। इसके बाद वे अपनी बुआ कुन्ती-से मिले। इतना ही नहीं; दुर्योधनके यहाँ जानेपर जब दुर्योधनने सम्बन्धी होनेके नाते श्रीकृष्णसे भोजनके लिये प्रार्थना की तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और फिर पुनः विदुरके यहाँ चले आये। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक आदि कई सम्भावित लोग उनसे मिलने आये और उन सबने श्रीकृष्णसे अपने यहाँ चलकर आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना की; परन्तु श्रीकृष्णने सम्मानपूर्वक सबको विदा कर दिया और उस दिन विदुरके यहाँ ही पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन किया ! इस घटनासे

सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि विदुरका श्रीकृष्णके प्रति कैसा अनुराग था। श्रीकृष्णका तो विरद ही ठहरा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९। २६)

प्रेमशून्य बड़ी-बड़ी तैयारियाँ और राजसी ठाट-बाट उन्हें आकर्षित नहीं कर सकते, किन्तु प्रेमके रससे परिप्लुत रूखा-सूखा भोजन भी उनकी तृप्तिके लिये पर्याप्त होता है।

भोजनके बाद रात्रिमें भी श्रीकृष्ण विदुरके यहाँ ही रहे और सारी रात उन्हें बातें करते बीत गयीं। सबेरे नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीकृष्ण कौरवोंकी सभामें चले गये। वहाँ जब दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़कर कैद करनेका दुःसाहसपूर्ण विचार किया, उस समय विदुरजीने श्रीकृष्णके बल एवं महिमाका वर्णन करते हुए उसे यह बतलाया कि 'ये साक्षात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ईश्वर हैं, यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे जैसे अग्निमें गिरकर पतङ्गा नष्ट हो जाता है। इसके बाद जब भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वरूप प्रकट किया, उस समय सब लोगोंने भयभीत होकर अपने-अपने नेत्र मूँद लिये। केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और उपस्थित ऋषिलोग ही उनका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्‌ने इन सबको दिव्य दृष्टि दे दी थी। थोड़ी ही देर बाद अपनी इस लीलाको समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण वापस उपप्लव्यकी ओर चले गये, जहाँसे आये थे। विदुरजी भी और लोगोंके साथ कुछ दूरतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये और फिर उनसे विदा लेकर वापस चले आये।

श्रीकृष्णके असफल लौट जानेपर दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर दोनों दल कुरुक्षेत्रके मैदानपर एकत्रित हुए और अठारह दिनोंमें अठारह अक्षौहिणी सेना घासकी तरह कट गयी। राजा धृतराष्ट्र अपने सौ-के-सौ पुत्रों तथा पौत्रोंका विनाश हो जानेसे बड़े दुखी हुए। उस समय विदुरजीने मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करते हुए यह बतलाया कि 'युद्धमें मारे जानेवालोंकी तो बड़ी उत्तम गति होती है, अतः उनके लिये तो शोक करना ही नहीं चाहिये।' उन्होंने यह भी बतलाया कि जितनी बार प्राणी जन्म लेता है, उतनी ही बार वह अलग-अलग व्यक्तियोंसे सम्बन्ध जोड़ता है और मृत्युके बाद वे सारे सम्बन्ध स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं, इसलिये भी मरे हुए सम्बन्धियोंके लिये शोक करना बुद्धिमानी नहीं है। फिर सुख-दुःख-से सम्बन्ध रखनेवाली संयोग-वियोग आदि जितनी भी घटनाएँ होती हैं, वे सब अपने ही द्वारा किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फलरूपमें प्राप्त होती हैं और कर्मफल सभी प्राणियोंको भोगना ही पड़ता है।' इसके बाद विदुरजीने संसारकी अनित्यता, निःसारता और परिवर्तनशीलता, जन्म और मृत्युके क्लेश, जीवका अविवेक, मृत्युकी दृष्टिसे सबकी समानता तथा धर्मके आचरणका महत्त्व बतलाते हुए संसारके दुःखोंसे छूटनेके उपायोंका दिग्दर्शन कराया।

युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो जानेके बाद जब धृतराष्ट्र पाण्डवोंके पास रहने लगे, तब विदुरजी भी धृतराष्ट्रके समीप रहकर उन्हें धर्मचर्चा सुनाया करते थे। वहाँसे जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने वन जानेका निश्चय किया तो ये भी उनके साथ हो लिये। वहाँ जाकर विदुरजीने घोर तपस्याका व्रत ले लिया।

वे निराहार रहकर निर्जन वनमें एकान्तवास करने लगे। शून्य वनमें कभी-कभी लोगोंका दर्शन हो जाया करता था। कुछ दिनों बाद जब महाराज युधिष्ठिर अपने समस्त परिवार एवं सेनाको साथ लेकर वनमे अपने ताऊ-ताई तथा माता कुन्तीसे मिलने आये और वहाँ विदुरजीको न देखकर उनके विषयमें राजा धृतराष्ट्रसे पूछने लगे, उसी समय उन्हें विदुरजी दूरपर दिखायी दिये। वे सिर-पर जटा धारण किये हुए थे, मुखमें पत्थर दबाये थे और दिगम्बर-वेष बनाये हुए थे। उनके धूलधूसरित दुर्बल शरीरपर नसें उभर आयी थीं। मैल जम गयी थी। वे आश्रमकी ओर देखकर लौटे जा रहे थे। युधिष्ठिर उनसे मिलनेके लिये उनके पीछे दौड़े और जोर-जोरसे अपना नाम बताकर उन्हें पुकारने लगे। घोर जङ्गलमें पहुँचकर विदुरजी एक वृक्षका सहारा लेकर स्थिर भावसे खड़े हो गये। राजा युधिष्ठिरने देखा कि विदुरजीका शरीर अस्थि-पञ्जरमात्र रह गया है, वे बड़ी कठिनतासे पहचाने जाते थे। युधिष्ठिरने उनके सामने जाकर उनकी पूजा की, विदुरजी समाधिस्थ होकर निर्निमेष दृष्टिसे युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे। इसके बाद वे योगबलसे अपने अङ्गोंको युधिष्ठिरके अङ्गोंमें, इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें तथा प्राणोंको प्राणोंमें मिलाकर उनके शरीरमें प्रवेश कर गये। उनका शरीर निर्जीव होकर उसी भाँति वृक्षके सहारे खड़ा रह गया। इस प्रकार साक्षात् धर्मके अवतार महात्मा विदुर धर्ममय जीवन बिताकर अन्तमें धर्ममूर्ति महाराज युधिष्ठिरके ही शरीरमें प्रवेश कर गये। बोलो धर्मकी जय!



(८) मन्त्रिश्रेष्ठ सञ्जय

सञ्जय महाराज धृतराष्ट्रके मन्त्री थे। ये जातिके सूत थे। वे बड़े स्वामिभक्त, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ थे। ये सत्यवादी एवं निर्भीक भी थे। ये धृतराष्ट्रको बड़ी अच्छी सलाह देते थे और उनके हितकी दृष्टिसे कभी-कभी कड़ी बातें भी कह दिया करते थे। इन्होंने अन्ततक धृतराष्ट्रका साथ दिया। ये महर्षि वेदव्यासके कृपापात्र तथा अर्जुन एवं भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी थे। ये दुर्योधनके अत्याचारोंका बड़े जोरोंसे प्रतिवाद करते थे और उनका समर्थन होनेपर धृतराष्ट्रको भी फटकार दिया करते थे। जब पाण्डव दूसरी बार जूएमें हारकर वनमें रहने लगे थे, उस समय इन्होंने पाण्डवोंके साथ दुर्योधनके अनुचित बर्तावकी बड़ी कड़ी आलोचना करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज! अब यह निश्चित है कि आपके कुलका तो नाश होगा ही, निरीह प्रजा भी न बचेगी। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुरजीने आपके पुत्रोंको बहुत मना किया; फिर भी उस निर्लज्जने पाण्डवोंकी प्रिय पत्नी धर्मपरायणा द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया। विनाशकाल समीप आनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है। अन्याय भी न्यायके समान दीखने लगता है। आपके पुत्रोंने अयोनिजा, पतिपरायणा, अग्निवेदीसे उत्पन्न सुन्दरी द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित कर भयङ्कर युद्धको न्योता दिया है। ऐसा निन्दनीय कर्म दुष्ट दुर्योधनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। क्या कोई निर्भीक-से निर्भीक मन्त्री राजाके सामने युवराजके प्रति इतना बड़ी किन्तु सच्ची बात कह सकता है? शास्त्रोंमें भी कहा गया है।

है—'अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः ।' धृतराष्ट्रने सञ्जयकी बातका अनुमोदन करते हुए अपनी कमजोरीको स्वीकार किया, जिसके कारण वे दुर्योधनके उस अत्याचारको रोक नहीं सके थे।

सञ्जय सामनीतिके बड़े पक्षपाती थे। इन्होंने युद्धको रोकनेकी बहुत चेष्टा की और दोनों ही पक्षोंको युद्धकी बुराइयाँ बतलाकर तथा आपसकी फूटके दुष्परिणामकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बहुत समझाया। पाण्डवोंने तो इनकी बात मान ली, परन्तु दुर्योधनने इनके सन्धिके प्रस्तावको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया, जिससे युद्ध करना अनिवार्य हो गया। दैवका विधान ऐसा ही था। कौरवके पक्षमें भीष्म, द्रोण, विदुर और सञ्जयका मत प्रायः एक होता था; क्योंकि ये चारों ही धर्मके पक्षपाती थे और हृदयसे पाण्डवोंके साथ सहानुभूति रखते थे। ये चारों ही राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंकी अप्रसन्नताकी तनिक भी परवा न कर उन्हें सच्ची बात कहनेमें कभी नहीं हिचकते थे। और सच्ची बात प्रायः कड़वी होती ही है।

जब धृतराष्ट्रने अपनी ओरसे पाण्डवोंके साथ बातचीत करनेके लिये सञ्जयको उपप्लव्यमें भेजा, तब सञ्जयने जाकर पाण्डवोंकी सच्ची प्रशंसा करते हुए उन्हें युद्धसे विरत होनेकी ही सलाह दी। उन्होंने कहा कि युद्धसे अर्थ और धर्म कुछ भी नहीं सधनेका। सन्धि ही शान्तिका सर्वोत्तम उपाय है और राजा धृतराष्ट्र भी शान्ति ही चाहते हैं, युद्ध नहीं। श्रीकृष्ण और अर्जुनके विशेष कृपापात्र होनेके नाते इन्हें यह पूरा विश्वास था कि ये लोग मेरी बातको कभी नहीं टालेंगे। अर्जुनके सम्बन्धमें तो इन्होंने यहाँतक

कह दिया कि 'अर्जुन तो मेरे माँगनेपर अपने प्राणतक दे सकते हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि सञ्जय अर्जुन और श्रीकृष्णके अनन्य प्रेमी थे। युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे सञ्जयकी बातका समर्थन किया, परन्तु उन्होंने सन्धिकी यही शर्त रक्खी कि उन्हें इन्द्रप्रस्थका राज्य लौटा दिया जाय। भगवान् श्रीकृष्णने भी धर्मराजका समर्थन किया और सञ्जय युधिष्ठिरका सन्देश लेकर वापस हस्तिनापुर चले आये। धृतराष्ट्रके पास जाकर पहले तो उन्होंने एकान्तमें उन्हें खूब फटकारा और पीछे सबके सामने पाण्डवोंका धर्मयुक्त सन्देश सुनाकर उनकी युद्धकी तैयारी तथा पाण्डवपक्षके वीरोंके बलका विशदरूपसे वर्णन किया। साथ ही इन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नता सिद्ध करते हुए उन्हें बतलाया कि दोनों एक-दूसरेके साथ कैसे घुले-मिले हैं। इन्होंने कहा कि 'जिस समय मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिलने गया, उस समय वे दोनों अन्तःपुरमें थे। वे जिस कमरेमें थे वहाँ अभिमन्यु और नकुल-सहदेवतकका प्रवेश नहीं था। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनके गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके पैर द्रौपदीकी और सत्यभामाकी गोदमें हैं।' सञ्जयके इस वर्णनसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता तो सिद्ध होती ही है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि सञ्जय श्रीकृष्ण और अर्जुनके अनन्य प्रेमी थे। जिस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेवका भी प्रवेश नहीं था और जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी पटरानियोंके साथ एकान्तमें बिलकुल निःसङ्कोचभावसे बैठे थे, वहाँ सञ्जयका बेरोक-टोक चला जाना और उनकी एकान्तगोष्ठीमें सम्मिलित होना इस बातको सिद्ध

करता है कि इनका भी श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ बहुत खुला व्यवहार था।

सञ्जय भगवान्‌के प्रेमी तो थे ही, इन्हें भगवान्‌के स्वरूपका भी पूरा ज्ञान था। इन्होंने आगे चलकर महर्षि वेदव्यास, देवी गान्धारी तथा महात्मा विदुरके सामने राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी और उन्हें सारे लोकोंका स्वामी बतलाया। इसपर धृतराष्ट्रने उनसे पूछा कि 'श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं—इस बातको तुमने कैसे जान लिया और मैं उन्हें इस रूपमें क्यों नहीं पहचान सका।' इसके उत्तरमें सञ्जयने वेदव्यासजीके सामने इस बातको स्वीकार किया कि 'मैंने ज्ञानदृष्टिसे ही श्रीकृष्णको पहचाना है, बिना ज्ञानके कोई उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता।' इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैं कभी कपटका आश्रय नहीं लेता, किसी मिथ्या धर्मका आचरण नहीं करता तथा ध्यानयोगके द्वारा मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। इसलिये मुझे श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया है।' इसके बाद स्वयं वेदव्यासजीने सञ्जयकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा कि 'इसे पुराणपुरुष श्रीकृष्णके स्वरूपका पूरा ज्ञान है, अतः यदि तुम इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त करा देगा।' सञ्जयके ज्ञानी होनेका इससे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा! इसके बाद धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा—'भैया! मुझे कोई ऐसा निर्भय मार्ग बताओ, जिसपर चलकर मैं भी भगवान् श्रीकृष्णको जान सकूँ और उनका परमपद पा सकूँ।' सञ्जयने उन्हें बतलाया कि 'इन्द्रियोंको जीते बिना कोई श्रीकृष्णको नहीं पा

सकता और इन्द्रियाँ भोगोंके त्यागसे ही जीती जा सकती हैं। प्रमाद, हिंसा और भोग—इन तीनका त्याग ही ज्ञानका साधन है। इन्हींके त्यागसे परमपदकी प्राप्ति सम्भव है।' अन्तमें सञ्जयने भगवान् श्रीकृष्णके कुछ नामोंकी बड़ी सुन्दर व्याख्या करके धृतराष्ट्रको सुनायी। इससे सञ्जयके शास्त्र-ज्ञानका भी पता लगता है।

जब दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ पूरी हो चुकीं और दोनों पक्षोंकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रके मैदानमें जा डटीं, उस समय महर्षि वेदव्यासजीने सञ्जयको दिव्यदृष्टिका वरदान देते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन्! यह सञ्जय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा। सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी ऐसी बात न होगी, जो इससे छिपी रहे। यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा। सामनेकी अथवा परोक्षकी दिनमें होनेवाली या रातमें होनेवाली तथा मनमें सोची हुई बात भी इसे मालूम हो जायगी। इतना ही नहीं, शस्त्र इसे काट नहीं सकेंगे, परिश्रमसे इसे थकान नहीं मालूम होगी और युद्धसे यह जीता-जागता निकल आयेगा।'

बस, उसी समयसे भगवान् वेदव्यासकी कृपासे सञ्जयको दिव्यदृष्टि हो गयी। वे वहीं बैठे युद्धकी सारी बातें प्रत्यक्षकी भाँति जान लेते थे और उन्हें ज्यों-का-त्यों महाराज धृतराष्ट्रको सुना देते थे। कोसोंके विस्तारवाले कुरुक्षेत्रके मैदानमें जहाँ अठारह अक्षौहिणियाँ आपसमें जूझ रही थीं, कौन वीर कहाँ किस समय किससे लड़ रहा है, वह किस समय किसपर कितने और कौन-कौनसे अस्त्रोंका प्रयोग करता है, कितनी बार कितने पैंतरे बदलता है। और किस प्रकार किस कौशलसे शत्रुका वार बचाता है,

उसका कैसा रूप है और कैसा वाहन—ये सब बातें वे एक ही जगह बैठे जान लेते थे। भगवद्गीताका उपदेश भी जिस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको दिया, वह सब इन्होंने अपने कानोंसे सुना (गीता १८ । ७४-७५)। केवल सुना ही नहीं, उपदेश देते समय श्रीकृष्णकी जैसी मुखमुद्रा थी, जो भावभङ्गी थी तथा जो उनका रूप था, वह इन्हें प्रत्यक्षकी भाँति ही दिखायी देता था। इतना ही नहीं, जिस समय भगवान्‌ने अर्जुनको अपना विश्वरूप दिखलाया, जिसे अर्जुनके सिवा और किसीने पहले नहीं देखा था और जिसके सम्बन्धमें स्वयं भगवान्‌ने उनसे कहा कि 'वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, दानसे, क्रियाओंसे तथा उग्र तपस्याओंसे भी कोई दूसरा इस रूपका दर्शन नहीं कर सकता' (गीता ११ । ४८), उस समय सञ्जयने भी उस रूपको उसी प्रकार देखा जिस प्रकार अर्जुन देख रहे थे। इसके बाद जब भगवान्‌ने अपने विश्वरूपको समेटकर अर्जुनको चतुर्भुजरूपसे दर्शन दिया, जिसका दर्शन भगवान्‌ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ बताया है तथा जिसके सम्बन्धमें उन्होंने बताया कि तप, दान और यज्ञसे भी उसका दर्शन नहीं प्राप्त किया जा सकता (गीता ११ । ५३), तब उसी दिव्य झाँकीका दर्शन महाभाग सञ्जयको भी हस्तिनापुरसे बैठे ही प्राप्त हो गया। उसी प्रसङ्गमें भगवान्‌ने अर्जुनको यह भी बताया कि केवल अनन्यभक्तिसे ही मेरे इस रूपका दर्शन सम्भव है (गीता ११ । ५४)। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सञ्जयको भी भगवान्‌की वह अनन्यभक्ति प्राप्त थी, जिसके कारण उन्हें भगवान्‌की उस दिव्य झाँकीका दर्शन हो सका।

गीता सुननेके बाद भी उस रूपकी स्मृति सञ्जयके लिये एक अलौकिक आनन्दकी सामग्री हो गयी। उन्होंने स्वयं अपनी उस उल्लासपूर्ण स्थितिका वर्णन करते हुए कहा है—

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥
(गीता १८। ७६-७७)

इससे यह सिद्ध होता है कि उनका श्रीकृष्ण और अर्जुनमें जो श्रद्धा-प्रेम था, वह विवेकपूर्वक था; क्योंकि वे उनके यथार्थ प्रभावको भी जानते थे। उन्होंने युद्धके पूर्व ही उनकी विजय घोषित करते हुए कह दिया था कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(गीता १८। ७८)

युद्ध-समाप्तिके बाद कुछ दिन महाराज युधिष्ठिरके पास रहकर जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनकी ओर जाने लगे तो सञ्जय भी उनके साथ हो लिये। वहाँ भी इन्होंने अपने स्वामीकी सब प्रकारसे सेवा की और जब उन्हें देवी गान्धारी और कुन्तीके सहित दावाग्निने घेर लिया तो ये उन्हींकी आज्ञासे वनवासी मुनियोंको उनके शरीरत्यागकी बात कहनेके लिये उन्हें छोड़कर आश्रममें चले आये और वहाँसे हिमालयकी ओर चले गये। इस प्रकार सञ्जयका जीवन भी एक महान् जीवन था। उनके जीवनसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य चाहे किसी भी वर्ण अथवा जातिका क्यों न हो, भगवान्‌की कृपासे वह कुछ-का-कुछ बन सकता है।

(६) भगवान् वेदव्यास

भगवान् वेदव्यास महर्षि पराशरके पुत्र थे। ये कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री सत्यवतीके गर्भसे जन्मे थे। व्यासजी एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे। ये एक महान् कारक पुरुष थे। इन्होंने लोगोंकी धारणाशक्तिको क्षीण होते देख वेदोंके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार विभाग किये और एक-एक संहिता अपने एक-एक शिष्यको पढ़ा दी। एक-एक संहिताकी फिर अनेकों शाखा-प्रशाखाएँ हुईं। इस प्रकार इन्हींके प्रयत्नसे वैदिक वाङ्मयका बहुविध विस्तार हुआ। व्यास कहते हैं विस्तारको; क्योंकि वेदोंका विस्तार इन्हींसे हुआ, इसलिये ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म एक द्वीपके अन्दर हुआ था और इनका वर्ण श्याम था, इसलिये इन्हें लोग कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण इनका एक नाम बादरायण भी है। अठारह पुराण एवं महाभारतकी रचना इन्हींके द्वारा हुई और संक्षेपमें उपनिषदोंका तत्त्व समझानेके लिये इन्होंने ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण किया, जिसपर भिन्न-भिन्न आचार्योंने भिन्न-भिन्न भाष्योंकी रचना कर अपना-अपना अलग मत स्थापित किया। व्यासस्मृतिके

नामसे इनका रचा हुआ एक स्मृतिग्रन्थ भी उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय एवं हिन्दू-संस्कृतिपर व्यासजीका बहुत बड़ा ऋण है। श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सनातनधर्मके व्यासजी एक प्रधान व्याख्याता कहे जा सकते हैं। इनके उपकारसे हिन्दू जाति कदापि उऋण नहीं हो सकती। जबतक हिन्दू जाति और भारतीय संस्कृति जीवित है, तबतक इतिहासमें व्यासजीका नाम अमर रहेगा। ये जगतके एक महान् पथ-प्रदर्शक और शिक्षक कहे जा सकते हैं। इसीसे इन्हें जगद्गुरु कहलानेका गौरव प्राप्त है। गुरुपूर्णिमा-(आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा-) के दिन प्रत्येक आस्तिक हिन्दू-गृहस्थ इनकी पूजा करता है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम रत्न भी संसारको व्यासजीकी कृपासे प्राप्त हुआ। इन्होंने ही भगवान् श्रीकृष्णके उस अमर उपदेशको अपनी महाभारतसंहितामें ग्रथित कर उसे संसारके लिये सुलभ बना दिया।

महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी एवं इच्छागति हैं। वे प्रत्येकके मनकी बात जान लेते हैं और इच्छा करते ही जहाँ जाना चाहें वहीं पहुँच जाते हैं। ये जन्मसे ही अपनी माताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चल दिये। जाते समय ये मातासे कह गये कि 'जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता जान पड़े, तुम मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास चला आऊँगा।'

जब पाण्डव विदुरजीकी बतायी हुई युक्तिका अनुसरण कर लाक्षाभवनसे निकल भागे और एकचक्रा नगरीमें जाकर रहने लगे, उन दिनों व्यासजी उनके पास उनसे मिलनेके लिये आये और

प्रसङ्गवश उन्होंने उन्हें द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर यह बताया कि 'यह कन्या तुम्हीं लोगोंके लिये पहलेसे निश्चित है।' इस बातको सुनकर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता एवं उत्सुकता हुई और वे द्रुपदकुमारीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये पाञ्चाल-नगरकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर जब अर्जुनने स्वयंवरकी शर्त पूरी करके द्रौपदीको जीत लिया और माता कुन्तीकी आज्ञासे पाँचों भाइयोंने उससे विवाह करना चाहा, तब राजा द्रुपदने इसपर आपत्ति की। उसी समय व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने द्रुपदको द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाँचों भाइयोंके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये राजी कर लिया।

महाराज युधिष्ठिरने जब इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ किया, उस समय भी वेदव्यासजी यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये अपनी शिष्य-मण्डलीके साथ पधारे थे। यज्ञ समाप्त होनेपर वे विदा होनेके लिये युधिष्ठिरके पास आये और बातों-ही-बातोंमें उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया कि आजसे तेरह वर्ष बाद क्षत्रियोंका महासंहार होगा, जिसमें दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे।

पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर तथा उन्हें बारह वर्षोंकी लम्बी अवधिके लिये बन भेजकर भी दुर्योधनको सन्तोष नहीं हुआ। वह पाण्डवोंको वनमें ही मार डालनेकी बात सोचने लगा। अपने मामा शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनसे सलाह करके उसने चुपचाप पाण्डवोंपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और सब लोग शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित रथोंपर सवार होकर वनकी ओर चल पड़े। व्यासजीको

अपनी दिव्यदृष्टिसे उनकी इस दुरभिसन्धिका पता लग गया। वे तुरंत उनके पास आये और उन्हें इस घोर दुष्कर्मसे निवृत्त किया। इसके बाद उन्होंने धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें समझाया कि 'तुमने जुएमें हराकर पाण्डवोंको वनमें भेज दिया, यह अच्छा नहीं किया, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम यदि अपना तथा अपने पुत्रोंका हित चाहते हो तो अब भी सँभल जाओ। भला यह कैसी बात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके लोभसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है। मैं कहे देता हूँ कि अपने इस लाडले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि उसने पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि तुम अपने पुत्रकी द्वेषबुद्धि मिटानेकी चेष्टा नहीं करोगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी सम्मति तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें आकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है पाण्डवोंके सत्सङ्गसे उसका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव जाग्रत् हो जाय। परंतु यह बात है बहुत कठिन, क्योंकि जन्मगत स्वभावका बदल जाना सहज नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो अपने पुत्रोंसे कहो कि वह पाण्डवोंके साथ मेल कर ले। व्यासजीने धृतराष्ट्रसे यह भी कहा कि थोड़ी ही देरमें महर्षि मैत्रेयजी यहाँ आनेवाले हैं। वे तुम्हारे पुत्रोंको पाण्डवोंसे मेल कर लेनेका उपदेश देंगे। वे जैसा कहें बिना सोचे-विचारे तुम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये। यदि उनकी बात नहीं मानोगे तो वे क्रोधवश शाप देंगे।' परन्तु दुष्ट

दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी और फलतः उसे महर्षि मैत्रेयका कोपभाजन बनना पड़ा !

व्यासजी त्रिकालदर्शी तो थे ही, उनका सामर्थ्य भी अद्भुत था। जब पाण्डवलोग वनमें रहते थे, उस समय उन्होंने एक दिन उनके पास जाकर युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनके प्रति स्मृति-विद्याका उपदेश दिया, जिससे उनमें देवदर्शनकी योग्यता आ गयी। इतना ही नहीं, इन्होंने सञ्जयको दिव्य दृष्टि दे दी, जिसके प्रभावसे उन्हें युद्धकी सारी बातोंका ही ज्ञान नहीं हुआ, बल्कि उनमें भगवान्‌के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूपके देवदुर्लभ दर्शनकी योग्यता भी आ गयी और वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे भगवद्गीताके दिव्य उपदेशका भी श्रवण कर सके, जिसे अर्जुनके सिवा और कोई भी नहीं सुन पाया था। जिस दिव्यदृष्टिके प्रभावसे सञ्जयमें इतनी बड़ी योग्यता आ गयी, उस दिव्यदृष्टिके प्रदान करनेवाले महर्षि वेदव्यासमें कितना सामर्थ्य होगा—इसलोग इसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे साक्षात् भगवान् नारायणकी कला ही जो ठहरे।

एक बार जब धृतराष्ट्र और गान्धारी वनमें रहते थे और महाराज युधिष्ठिर भी अपने परिवारके साथ उनसे मिलनेके लिये गये हुए थे, व्यासजी वहाँ आये और यह देखकर कि धृतराष्ट्र और गान्धारीका पुत्रशोक अभीतक दूर नहीं हुआ है और कुन्ती भी अपने पुत्रोंके वियोगसे दुःखी है, उन्होंने धृतराष्ट्रसे वर माँगनेको

कहा। राजा धृतराष्ट्रने उनसे यह जानना चाहा कि महाभारत-युद्धमें उनके जिन कुटुम्बियों और मित्रोंका नाश हुआ है, उनकी क्या गति हुई होगी; साथ ही उन्होंने व्यासजीसे उन्हें एक बार दिखला देनेकी प्रार्थना की। व्यासजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए गान्धारीसे कहा कि 'आज रातको ही तुम सब लोग अपने मृत बन्धुओंको उसी प्रकार देखोगे, जैसे कोई सोकर उठे हुए मनुष्यको देखे !' सायंकाल नित्यकृत्य करके व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग गङ्गातटपर एकत्रित हुए। व्यासजीने गङ्गाजीके पवित्र जलमें घुसकर पाण्डव एवं कौरवपक्षके योद्धाओंको जो युद्धमें मर गये थे; आवाज दी। उसी समय जलमें वैसा ही कोलाहल सुनायी दिया, जैसा कौरवों एवं पाण्डवोंकी सेनाओंके एकत्र होनेपर कुरुक्षेत्रके मैदानमें सुन पड़ा था। इसके बाद भीष्म और द्रोणको आगे करके वे सब राजा और राजकुमार, जिन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की थी, सहसा जलमेंसे बाहर निकल आये। युद्धके समय जिस वीरका जैसा वेष था, जैसी ध्वजा थी, जो वाहन थे, वे सब ज्यों-के-त्यों वहाँ दिखायी दिये। वे दिव्यवस्त्र और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए थे। सबने चमकते हुए कुण्डल पहन रक्खे थे और सबके शरीर दिव्य प्रभावसे चम-चम कर रहे थे। सब-के-सब निर्वैर, निरभिमान, क्रोधरहित और डाहसे शून्य प्रतीत हुए थे। गन्धर्व उनका यश गा रहे थे और वन्दीजन स्तुति कर रहे थे। उस समय व्यासजीने धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र दे दिये, जिनसे वे उन सारे योद्धाओंको अच्छी तरह देख सकें। वह दृश्य अद्भुत, अचिन्त्य और रोमाञ्चकारी

था। सब लोगोंने निर्निमेष नेत्रोंसे उस दृश्यको देखा। इसके बाद सब आये हुए योद्धा अपने-अपने सम्बन्धियोंसे क्रोध और वैर छोड़कर मिले। इस प्रकार रातभर प्रेमियोंका यह समागम जारी रहा। इसके बाद वे सब लोग जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार भागीरथीके जलमें प्रवेश करके अपने-अपने लोकोंमें चले गये। उस समय वेदव्यासजीने जिन स्त्रियोंके पति वीरगतिको प्राप्त हुए थे, उनको सम्बोधन करके कहा कि 'आपमेंसे जो कोई अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हों, उन्हें गङ्गाजीके जलमें गोता लगाना चाहिये।' उनके इस वचनको सुनकर बहुत-सी स्त्रियाँ जलमें घुस गयीं और मनुष्य-देहको छोड़कर अपने-अपने पतिके लोकमें चली गयीं। उनके पति जिस प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर आये थे, उसी प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंको धारणकर तथा विमानोंमें बैठकर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंमें पहुँच गयीं।

इधर राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके मुखसे जब यह अद्भुत वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने भी अपने स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित्के दर्शन करने चाहे। व्यासजी वहाँ मौजूद ही थे। उन्होंने राजाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय राजा परीक्षित्को वहाँ बुला दिया। जनमेजयने यज्ञान्त-स्नानके अवसरपर अपने साथ अपने पिताको भी स्नान कराया और इसके बाद परीक्षित् वहाँसे चले गये। इस प्रकार महर्षि वेदव्यासजीने अपने अलौकिक सामर्थ्यका प्रकाश किया। महर्षि वेदव्यास वास्तवमें एक अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष थे। महाभारतके

रचयिता उन्हीं महर्षिके पुनीत चरणोंमें मस्तक नवाकर हम अपने इस लेखको समाप्त करते हैं।

इस प्रकार महाभारतके भी नौ आदर्श पात्रोंके चरित्रका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया। आशा है, प्रेमी पाठक इन शिक्षाप्रद चरित्रोंके अनुशीलनसे यथेष्ट लाभ उठायेंगे। भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धकी चर्चा भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारके 'महाभारतमें श्रीकृष्ण' शीर्षक लेखमें आ गयी है, अतः उनके चरित्रका मैंने अलग उल्लेख नहीं किया।



श्रीहरिः

महाभारतके पठन एवं श्रवणका माहात्म्य

यथा समुद्रो भगवान् यथा च हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥६५॥
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते।
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः ॥६६॥

द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥६७॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥६८॥

(महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व)

जैसे समुद्र और हिमालय पर्वत दोनोंको रत्नोंकी खान कहते हैं, उसी प्रकार यह महाभारत भी [गीता-जैसे] रत्नोंकी खान ही

है। यह भारत महर्षि कृष्णद्वैपायनका रचा हुआ पाँचवाँ वेद है। जो विद्वान् इसे दूसरोंको श्रवण कराता है, उसके सारे अर्थ सिद्ध हो जाते हैं। और जो एकाग्रचित्त होकर इस महाभारत इतिहासका पाठ करता है, उसे निःसन्देह मोक्षरूप परम सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान् कृष्णद्वैपायनके मुखारविन्दसे निकला हुआ यह महाभारत अत्यन्त पुण्यजनक, पवित्र, पापहारी, एवं कल्याणरूप है, इसकी महिमा अपार है। जो इस महाभारतकी कथाको सुनकर उसे हृदयङ्गम कर लेता है, उसे तीर्थराज पुष्करके जलमें गोता लगानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। पुष्कर-स्नानका जो फल शास्त्रोंमे कहा गया है, वह उसे इस कथाके श्रवणसे ही मिल जाता है। एक ओर तो एक मनुष्य वेदज्ञ एवं अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणको सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली सौ गौएँ दान करता है और दूसरी ओर दूसरा मनुष्य नित्य महाभारतको पुण्यमयी कथाका श्रवण करता है। उन दोनोंको समान फल मिलता है।



मिलनेका पता—

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)